जनवरी-२००० Rs.10/-

# चन्दामामा

नव वर्ष की शुभ कामनाएँ

# Create your own Toons!!

Wicked Toon has an ace up his sleeve

Lucky Toon keeps u in favour

Reveal the secrets of Pirate Toon

Colouring has never been so much of fun.
And now there's more...
Mix 'n Match and create your
own Toons with the New Funfaces
sticker free along with every pack of

Long Colouring Pens

Fun Strokes that go on and on

# चन्दामामा

सम्पुट-१०२ जनवरी २००० सञ्चिका-१

## अन्तरङ्गम्

**कहानियाँ**



**ज्ञानप्रद धारावाहिक**



**पौराणिक धारावाहिक**



**ऐतिहासिक विभूतियां**



**विशेष**



Printed and Published by B. Viswanatha Reddi at B.N.K Press Pvt. Ltd., Chennai-600 026 on behalf of Chandamama India Limited, Chandamama Buildings, Vadapalani, Chennai-600 026. Editor: Viswam

**इस माह की विशेष**

राक्षस धर्म
बेताल कथा

भारत की गाथा

अभिव्यक्त करो!
पुरस्कार लो!

आप अपने
दूर रहनेवाले
करीबियों के लिए
सोच सकते हैं

# चन्दामामा

**उन्हें उनकी**
**पसंद की भाषा में एक**
**पत्रिका दें**

असमिया, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़,
मलयालम, मराठी, उड़िया, संस्कृत, तमिल व तेलुगु

और उन्हें घर से दूर घर के स्नेह को महसूस होने दें

**शुल्क**
सभी देशों में एयर मेल द्वारा
छह अंक 300 रुपये
बारह अंक 500 रुपये
भारत में भूतल डाक द्वारा बारह अंक १२० रुपये
अपनी रकम
डिमांड ड्राफ्ट या मनी आर्डर द्वारा
'चंदामामा इंडिया लिमिटेड' के नाम भेजें
सेवा में:

प्रकाशन विभाग
**चन्दामामा इंडिया लिमिटेड**
चंदामामा बिल्डिंग्स, वडापलानि चेन्नई-600 026

संपादक
**विश्वम**
संपादकीय सलाहकार
**रस्किन बंड**
**मनोज दास**
डिजाइनिंग व तकनीकी सलाहकार
**उत्तम**
प्रकाशक
**बी. विश्वनाथ रेड्डी**
मार्केटिंग निदेशक
**बी. मधुसूदन**
प्रधान कार्यालय
**चंदामामा बिल्डिंग्स**
**वडापलानि, चेन्नई-600 026**
**फोन-481778**
अन्य कार्यालय
**दिल्ली**
फ्लैट नं. 415, 4थी मंजिल
प्रताप भवन,
एस. बहादुरशाह जफर मार्ग
नई दिल्ली-110 002
फोन : 2270199
**मुंबई**
2/बी. नाज बिल्डिंग्स
लेमिंगटन रोड, मुंबई-400 004
फोन : 3889763-3886324-3877110
फाक्स : 3889670

संस्थापक

**चक्रपाणि, बी. नागी रेड्डी**

# आशा की घड़ी

पूरे संसार के वातावरण में आज आशा और अपेक्षा की लहर है। हम एक महान मुहूर्त्त से गुजर रहे हैं। यह न केवल एक शताब्दी का प्रारम्भ है, बल्कि एक नये युग का सूत्रपात भी है। यदि हम उत्तेजित और उत्साहित अनुभव कर रहे हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

क्या २००० वर्ष को बीसवीं शताब्दी का अन्तिम वर्ष माना जाये या इक्कीसवीं शताब्दी का प्रथम वर्ष-यह अभी तक विवादास्पद है। लेकिन इस बात का कोई महत्व नहीं। हम नये वर्ष को दो शताब्दियों के मध्य सेतु के रूप में भली भाँति स्वीकार कर सकते हैं।

नयी शताब्दी और नये युग की ओर आशाओं और अपेक्षाओं के साथ हमारे टकटकी लगा कर देखने का क्या कोई विशेष महत्व है? हाँ, सचमुच है। इस सम्बन्ध में हमारी आशा बेहतर के प्रति है। हमारी अपेक्षा एक सुनहरे भविष्य के प्रति है। बीसवीं सदी के दौरान मनुष्य ने बहुत आपदाएं झेली हैं। उनमें से कुछ मानव निर्मित हैं-विश्व युद्ध, भारत का विभाजन आदि आदि। उनमें से कुछ प्राकृतिक हैं-जैसे भूकम्प, तूफान और यहाँ तक कि महातूफान, जो अभी-अभी उड़ीसा को उजाड़ चुका है। लेकिन मनुष्य ने कई उदात्त आदर्शों को भी उपलब्ध किया है। जैसे-स्थायी संयुक्त राष्ट्र संघ और आणविक अस्त्रों को समाप्त करने की उत्सुकता। प्राकृतिक आपदाओं में पीड़ित व्यक्तियों को पास और दूर के लोगों से तुरन्त सहानुभूति और सहायता मिलती है।

आइये, आगामी दिनों में एक बहुत-बहुत बेहतर, प्रज्ञावान और संगठित मानवता के आगमन की हम सब अभीप्सा करें।

# समाचार-झलक

## जलमग्न द्वारका से संकेत

पुराणों के अनुसार द्वारका नगर (गुजरात में) की संस्थापना श्रीकृष्ण ने की थी। संस्थापक के देह-त्याग के तुरंत बाद, नगर जलमग्न हो गया।

भारतीय नौ पुरातत्व के वरिष्ठ सदस्य डॉ. आर.एस.राव, जिन्होंने उस पौराणिक स्थान की खुदाई में वर्षों तक कार्य किया है, का कहना है कि श्रीकृष्ण का नगर तीन हजार सात सौ वर्ष पूर्व प्राचीन द्वीप कुशास्थली के भग्नावशेष पर निर्मित किया गया

था। किन्तु, केवल सौ वर्षों के बाद ही उसे समुद्र ने निगल लिया। लेकिन श्रीकृष्ण ने आप्लावन के एक सप्ताह पूर्व लोगों के निष्कासन की व्यवस्था कर ली थी। डा. राव के अनुसार श्रीकृष्ण ने द्वारका के निर्माण में भूमि सुधार शिल्पविज्ञान का प्रयोग किया था जो आज भी प्रयोग में लाया जाता है।

द्वारका की खुदाई कोष के अभाव में निलम्बित कर दी गई है। बी.बी.सी. शीघ्र ही सम्पूर्ण योजना पर फिल्म बनायेगी।

## सबसे वृद्ध पादचारी

जॉर्डन निवासी, गरियार, जो १२८ वर्ष की आयु में मरा, 'सब जगह' पैदल जाता था। वह अपने अन्तिम दिनों तक पैदल चलता रहा।

किन्तु अपनी युवावस्था में जॉर्डन के संस्थापक, किंग

अब्दुल्ला-१ के साथ घोड़ों और ऊँटों को दौड़ाता था।

उसे मधुर और पौष्टिक भोजन प्रिय था, परन्तु, प्रायः उपवास रखता था। वह अपने पीछे १२८ पोतों और परपोतों की फौज छोड़ गया है।

## पृथ्वी पर विचरनेवाला विशालतम प्राणी

"यह सचमुच विस्मयजनक है। पृथ्वी पर कभी विचरण करनेवाला विवादास्पद रूप से यह विशालतम प्राणी है।" ओक्लाहामा विश्वविद्यालय के विशेषज्ञ रिचर्ड सिफली का यह कथन है। उन्होंने एक दल का नेतृत्व किया, जिसने दक्षिण-पूर्व ओक्लाहामा में एक डिनोसौर के अवशेषों की खोज की, जो जीवित अवस्था में ६० टन भारी और ६० फुट लम्बा था और

जिसकी गरदन लिखित प्रमाण के अनुसार सबसे लम्बी थी। यह आसानी से छठी मंजिल की खिड़की में झांक सकता था। इसका नाम 'सौरोपोसायडन' रखा गया है, जिसका अर्थ है-"गॉड-लिज़र्ड, जिसके चलने से पृथ्वी हिल जाती थी।"

## जिनकी इस महीने जयन्ती हे

# स्वामी विवेकानंद

### भारत के पुनरुत्थान का स्वर

कलकत्ता विश्वविद्यालय का कानून का एक युवा स्नातक छात्र प्रायः श्री रामकृष्ण परमहंस से मिलने जाया करता। जिन्होंने यह सुना था कि वह गुरु से बहुत प्रश्न करता है, उनमें से कुछ ने यह सोचा होगा कि उसके कभी ज्ञानी बनने की कोई आशा नहीं है, क्योंकि उसके प्रश्न आवश्यक नहीं कि अध्यात्म पर ही होते, बल्कि वे भौतिक और तार्किक प्रकृति के होते थे।

उन्हें शायद यह नहीं मालूम था कि गुरु की कृपा उस युवक को आध्यात्मिक पैगम्बर में बदल देगी, कि नरेन्द्रनाथ दत्त एक दिन यशस्वी स्वामी विवेकानन्द बन जायेगा।

विवेकानन्द का जन्म एक मध्यम वर्ग के परिवार में सन् १८६३ में १२ जनवरी को हुआ था। श्री रामकृष्ण के शिष्य बनने के बाद वे संन्यासी बन गये। लेकिन वे ऐसे संन्यासी थे, जिन्होंने अज्ञान में डूबे मानव समाज या देश की उपेक्षा नहीं की, वरन् उनमें सोये हुए भगवान को देखा।

सन् १८८६ में श्री रामकृष्ण का देहावसान हो गया। इसके पश्चात् सन् १८९३ में विवेकानन्द ने अमेरिका का भ्रमण किया और शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन को सम्बोधित किया। भारत के मूलभूत दर्शन वेदान्त पर उनकी व्याख्या सुन कर श्रोता मंत्रमुग्ध हो गये। अमेरिका के बाद वे इंग्लैंड गये। दोनों देशों में काफी संख्या में स्त्री और पुरुष उनके शिष्य बन गये।

प्रसिद्ध रामकृष्ण मिशन की इन्होंने ही स्थापना की और भारत का भ्रमण कर हजारों लोगों, विशेष कर तरुणों को देश सेवा के आदर्श की प्रेरणा दी। मानव जीवन के उद्देश्य से सम्बन्धित भारत की प्रतिभाओं द्वारा की गई महान खोजों को उद्घाटित करनेवाली, योग पर, उन्होंने बहुत पुस्तकें लिखीं।

सन् १९०२ में ४० वर्ष से भी कम आयु में इन्होंने अपना शरीर त्याग दिया, किन्तु, अपने पीछे एक अमर परम्परा छोड़ गये।

### स्वामी विवेकानन्द की वाणी

"विविधता में एकता जगत की योजना है। हम सब मनुष्य हैं, फिर भी, एक दूसरे से भिन्न हैं। मानवता के नाते मैं आप के साथ एक हूँ, किन्तु अमुक व्यक्ति के नाते आप से अलग हूँ। आप एक पुरुष के नाते स्त्री से भिन्न हैं, परन्तु, एक मनुष्य के रूप में स्त्री के साथ एक हैं। एक मनुष्य के नाते आप पशु से भिन्न हैं परन्तु, एक प्राणी के रूप में पुरुष, स्त्री, पशु और पेड़ पौधे सब एक हैं। और एक सत्ता के रूप में आप समस्त ब्रह्माण्ड के साथ एक हैं।"

# धन्यवाद पत्रकार बन्धु!

चन्दामामा का पुनरागमन निस्सन्देह युवजनों के लिए हर्ष का विषय था, और यही प्रत्याशित था; किन्तु जन-संचार-माध्यमों के द्वारा इस घटना की उत्साहपूर्ण ब्याप्ति से हमें और भी आश्वासन मिला। अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के समाचार पत्रों ने अपने पाठकों को यह सुसंवाद दिया तथा बी.बी.सी. व दूरदर्शन मेट्रो (टी.वी. टुडे का 'आजतक') ने प्रकाशकों के साथ भेंटवार्ता प्रसारित की, जिसमें प्रकाशन की पृष्ठ-भावना पर बल दिया गया-जो कहानियों, पौराणिक आख्यानों, प्रश्नावलियों तथा अन्य प्रस्तुतियों द्वारा, भविष्य के प्रति आस्था के साथ नई सहस्राब्दी में प्रवेश करने की प्रेरणा देते हुए भारतीय परम्परा के विविध पक्षों से युवजनों को परिचित कराना है।

हम संचार-माध्यमों का धन्यवाद करते हुए चन्दामामा के साथ नये युग में उनकी शुभ यात्रा की कामना करते हैं।

इसके साथ ही, हम अपने बहुसंख्य पाठकों, लेखकों, वितरकों, प्रतिनिधियों तथा अन्य सहयोगियों व शुभ-चिन्तकों के लिए भी यही कामना करते हैं, जिन्होंने प्रकाशन के पुनः आरम्भ होने की खबर मिलते ही अपने पुनर्समर्थन की सहर्ष पुष्टि की।

B. Viswanatha Reddi

-प्रकाशक

# सर्जनात्मक स्पर्द्धाएँ

## चन्दामामा
### पाठकों को आमंत्रित करता है

निम्नलिखित क्षेत्रों में कल्पना की उड़ान और खोज भरे सर्जनात्मक प्रतियोगों में भाग लेने के लिए :

## छाया चित्र
### अनुशीर्षक प्रतियोगिता

१. छायाचित्र अनुशीर्षक प्रतियोगिता पृष्ठ के लिए: उदीयमान छविकार एक युगल-चित्र भेज सकते हैं, जिसमें दोनों चित्र एक दूसरे से किसी प्रकार सम्बन्धित हों। दोनों चित्रों में सम्बन्ध के बारे में छविकार का अपना स्पष्टीकरण साथ में अवश्य होना चाहिए।

**चयनित युगलचित्रों के लिए**

**पारितोषिक : ५०० रु.**

प्रतियोगिता के लिए छाया चित्र किसी समय भेजे जा सकते हैं।

२. चन्दामामा द्वारा घोषित मुहावरा या लोकोक्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए पाठक १५०-१७५ शब्दों में एक उपाख्यान या चुटकुला, निजी अनुभव या कहानी (नई/पुरानी) भेज सकते हैं। कृपया याद रखें कि आप की रचना में कहानी का तत्व हो, किन्तु वह मूल कथा न हो जिससे यह लोकोक्ति या मुहावरा लिया गया है।

वर्तमान प्रतियोग के लिए

**लोकोक्ति :**

**ये अंगूर खट्टे हैं**

चयनित रचना पर पारितोषिक : ५०० रु.

सभी प्रस्तुतियाँ प्राप्त करने की

**अन्तिम तिथि ३१ जनवरी, २०००**

पुरस्कृत रचना चन्दामामा के अप्रैल, २००० अंक में प्रकाशित होगी।

# राक्षस धर्म

धुन का पक्का विक्रमार्क पुनः पेड़ के पास चला गया। पेड़ पर से उसने शव को उतारा और अपने कंधे पर डाल लिया। फिर वह यथावत् मौन धारणकर श्मशान की ओर अग्रसर होने लगा। तब शव के अन्दर से बेताल बोला,-''राजन! तुममें अपार सहनशक्ति है। कठोर से कठोर परिश्रम कर सकते हो। जो चाहते हो उसे प्राप्त करने की तुममें दृढ़ संकल्प-शक्ति है। तुम्हारे इन सद्गुणों की दाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता। फिर भी, एक सन्देह है, जो मुझे खाये जा रहा है। उन गुणों के समान ही तार्किक बुद्धि, और छल-कपट करने वाले धोखे बाजों को देखते ही परख लेने की तीक्ष्ण दृष्टि क्या तुममें है? कुछ लोग परिस्थितियों के संयोग से या भाग्य

के बल पर धरती से उठ कर आकाश तक पहुँच जाते हैं और स्वर्ग का आनन्द लूटते हैं। यह लौकिक सूत्र केवल मानवों के लिए ही लागू नहीं होता, बल्कि दानवों के लिए भी लागू होता है। कुछ लोग तार्किक बुद्धि, ज्ञान और अनुभव को भुला देते हैं और द्वार तक आये भाग्य और सुअवसर को अपने हाथों से निकल जाने देते हैं। तुम्हें सचेत करने और भविष्य में सावधानी बरतने के लिए दीर्घबाहु नामक एक दानव की कथा सुनाता हूँ, जिससे मार्ग की थकावट दूर हो सके।

इतना कह कर दानव यों कहानी सुनाने लगाः

बहुत पहले की बात है। कुंतल राज्य में एक वृद्ध पुरोहित रहता था। उसका नाम शंकर शास्त्री था। एक बार वह किसी दूरस्थ गाँव में एक धनी यजमान के घर एक धार्मिक अनुष्ठान कराने गया। अनुष्ठान की समाप्ति के बाद दक्षिणा में मूल्यवान वस्तुओं की भेंट लेकर वह वापस आ रहा था। जल्दी घर पहुँचने के लिए उसने जंगल से होकर गाँव तक जाने वाली पगडंडी पकड़ ली। कुछ दूर चलने के बाद वह घने जंगलों से ढकी एक पहाड़ी के पास से जाने लगा। पहाड़ी की एक गुफा में एक दानव रहता था। वह हर रोज गुफा के द्वार पर बैठ कर अपने भोजन का इंतजार करता था। कई दिनों से भोजन नहीं मिलने के कारण वह बहुत भूखा था। दूर से शंकर शास्त्री को आते देख उसकी बांछें खिल गईं। यद्यपि पगडंडी से उसकी गुफा काफी ऊंचाई पर थी, पर कोई बात नहीं, फिर भी उसने अपनी एक भुजा लम्बी करके शंकर शास्त्री को उसकी कमर से दबोच लिया और अपने गुफा जैसे मुख के निकट लाकर कहा,- ''अरे, आज कैसा बेमज़ा खाना मिला। दुबला-पतला-बूढ़ा-बेस्वाद! पर कोई बात नहीं। थोड़ी देर तक भूख मिटाने के लिए उतना बुरा भी नहीं।''

शंकर शास्त्री उसके पंजों में ऐसा लग रहा था जैसे किसी विशाल वृक्ष की शाखा से वह लटक रहा हो। उसकी दृष्टि जब नीचे पड़ी तो भय से काँप गया। उसका खुला मुँह गुफा के समान लग रहा था और दाँत बरछों के समान पैने थे।

पुरोहित ने देखा कि दानव उसे तुरंत न मार कर कुछ बात कर रहा है तो उसे जान बचाने की एक युक्ति सूझी। उसने सोचा कि यदि उसे प्रसन्न करने वाली कोई बात सुनाऊँ तो शायद मुझे वह छोड़ दे। इसलिए उसने कहा,-''हे दानवेन्द्र, आप को देखने मात्र से पता चल जाता है कि आप सर्वशक्तिमान हैं और अद्‌भुत अलौकिक शक्तियों के स्वामी हैं। आपने अपनी गुफा से ही बैठे-बैठे अपनी लम्बी भुजा बढ़ा कर रास्ते पर से मुझे उठा लिया। यह चमत्कार न तो मनुष्य कर सकता है,

न देवता। यह आप जैसे दानवेन्द्र से ही संभव हो सकता है।''

दानव उस वृद्ध पुरोहित की बात से बहुत प्रसन्न हुआ और ठठा कर हँसा। उसकी हँसी से जंगल गूंज उठा। ''अरे जर्जर मानव! जन्म से ही मेरे हाथ लम्बे हैं। इसीलिए मेरा नाम दीर्घबाहु है। यह देख...'' इतना कहते हुए उसने अपने दूसरे हाथ को बढ़ा कर दूर के एक पेड़ की शाखा तोड़ कर फेंक दी।

शंकर शास्त्री का साहस थोड़ा और बढ़ा। उसने दानव को बहलाने की एक तरकीब सोच ली। उसने दानव को निडरता पूर्वक देखते हुए कहा,-''मैं तो वृद्ध हूँ और त्रिकालदर्शी ज्योतिषी होने के नाते मैं अपनी मृत्यु का समय भी जानता हूँ, जो कि शीघ्र आनेवाला है। यदि मेरा क्षीण काय तुम्हारे किसी काम आ सके और उससे थोड़ी देर के लिए तुम्हारी भूख मिट सके तो यह हमारे लिए सौभाग्य की बात होगी। मुझे हजारों जन्मों का पुण्य-फल मिलेगा। लेकिन मरने से पहले मैं चाहता हूँ कि तुम मुझसे अपने जन्म का रहस्य जान लो। फिर मुझे आहार बना लेना।''

यह सुन कर दीर्घबाहु और प्रसन्न हुआ। उसने खुशी के मारे शंकर शास्त्री को जमीन पर रख दिया और कहा,-''अरे! वाह! क्या मेरे जन्म का भी कोई रहस्य है? यदि है तो शीघ्र बताओ।'' उसकी बातों में बच्चों की-सी उत्सुकता थी।

शंकर शास्त्री ने महाज्ञानी और त्रिकाल दर्शी का अभिनय करते हुए पहले उसके चेहरे को गौर से देखा। फिर आँखें बन्द करके आकाश को निहारा। उसी मुद्रा में थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद वह बोला,-''अपने पूर्व जन्म में दो पीढ़ियों के पहले कुंतल राज्य के महाराजा शूरसिंह तुम्हीं थे। उस

समय के तुम्हारे शासन के बारे में कितनी ही गाथाएँ आज भी प्रसिद्ध हैं। उस समय तुम्हारी ख्याति और कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। एक क्रोधी ऋषि के शापवश तुम्हें राक्षस योनि में जन्म लेना पड़ा। अब इस गुफा में कठोर पाषाण ही तुम्हारी शैया और सिंहासन है। हिंसक पशुओं के समान नर-भक्षण करते हो। कहाँ महान और कीर्तिवान महाराज शूरसिंह और कहाँ क्रूर और कठोर जीवन यापन करने वाला राक्षस दीर्घबाहु। तुम्हारी इस दुरावस्था को देख कर मुझे बहुत दुःख हो रहा है।'' झूठी सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उसने अपने प्राण बचाने के लिए उसके मन में नर भक्षण के प्रति घृणा उत्पन्न करने का प्रयास किया।

''तुम्हें मेरे लिए दुखी होने की जरूरत नहीं है मनुष्य! मैं अपने महान अतीत के बारे में जान गया, यह क्या कम प्रसन्नता का विषय है? अब मेहरबानी

करके मेरे भविष्य के बारे में भी बता दो कि इस शाप से मुक्ति का कोई उपाय है या नहीं। और कब तक हम इस योनि में पड़े रहेंगे?'' दानव ने पूछा।

गंभीर बन कर सिर हिलाते हुए शंकर शास्त्री ने कहा,-''है, मुक्ति का मार्ग है। लेकिन... लेकिन जिस ऋषि ने तुम्हें शाप दिया है, वे ही इससे मुक्त कर सकते हैं। और हमारी अन्दर्दृष्टि बता रही है कि वे इस समय हिमालय में तपस्या कर रहे हैं। अतः तुम शाप से कभी नहीं मुक्त हो सकते। पर यदि तुम चाहो तो राक्षस के रूप में ही राजा अवश्य बन सकते हो। राजा हो जाओगे तो तुम्हारे सुखों का कभी अन्त नहीं होगा। आहार के लिए गुफा के सामने बैठ कर किसी प्राणी का इन्तजार नहीं करना पड़ेगा। राजा बन जाने के बाद बेरोकटोक मनपसन्द भोजन मिला करेगा। छक कर मदिरा पान कर सकोगे। पहनने के लिए इत्र से तर रेशमी वस्त्र और स्वर्ण अलंकार मिलेंगे। और तुम्हारी सेवा के लिए अनगिनत नौकर-चाकर हर वक्त तैयार रहेंगे।'' राक्षस के चंगुल से बचने के लिए बातों का एक और जाल उसने बुना।

शंकर शास्त्री की बातें सुन कर दीर्घबाहु दिवास्वप्न में खो गया। उसे लगने लगा जैसे वह सचमुच राजा बन गया है। लेकिन राजा बन जाने के बावजूद सुख-सुविधाओं में उसे आनन्द नहीं आ रहा है। उसे बस एक ही चिन्ता थी-मनुष्य का भोजन। भोजन की याद आते ही उसका दिवा-स्वप्न टूट गया। उसने पुरोहित से पूछा,-''और खाने के लिए क्या मिलेगा? मुझे तो कम से कम तीन मनुष्यों का भोजन प्रति दिन चाहिए। मेरी प्रजा को तो मेरा यह काम बिल्कुल अच्छा नहीं लगेगा।''

''इस समस्या का भी समाधान है। बात यह है कि राज्य की जनसंख्या इतनी बढ़ गई है कि लोगों के पास दो जून खाने के लिए भोजन नहीं मिल रहा है। लोग भूख से तड़प-तड़प कर मर रहे हैं। उन्हें तो भूखों मरना ही है, चाहे तुम उन्हें खाओ या न खाओ। तुम्हारे खाने से यदि वे मरते हैं तो तुम्हें जीवन मिलेगा और उन्हें सोद्देश्य मृत्यु मिलेगी।

राज्य का लाभ यह होगा कि वहाँ की जनसंख्या नियंत्रित रहेगी। प्रजा समझेगी कि तुम जनसंख्या की समस्या का समाधान कर रहे हो। इसमें तुम्हारी प्रशंसा ही होगी। कोई तुम्हें दोषी नहीं ठहरायेगा।'' शंकर शास्त्री ने अपनी तर्क बुद्धि से राक्षस में यह विश्वास भर दिया कि वह जो कुछ कह रहा है, उसी की भलाई के लिए कह रहा है।

'' लेकिन उस राजा का क्या होगा जो अभी राज्य कर रहा है?'' राक्षस के मन में फिर एक सन्देह उठा।

''तुम इसकी चिंता मत करो और इसकी जिम्मेदारी मुझ पर छोड़ दो। यों तो तुम्हारी शक्ति के सामने वह अपने आप ही घुटने टेक देगा। तुम उसे मार कर भी गद्दी पर बैठ सकते हो। किन्तु मैं इसकी नौबत नहीं आने दूंगा। मैं ऐसी युक्ति करूँगा कि राजा स्वयं अपनी इच्छा से तुम्हें राजगद्दी सौंप देगा। बस, तुम्हें सिर्फ मेरे साथ राजधानी तक चलना होगा।'' शंकर शास्त्रीने अपनी रक्षा के लिए अपनी बुद्धि के तरकश का आखिरी अमोघ बाण चला दिया और यह सचमुच काम कर गया। दानव इसके चकमें में आकर इसके साथ चलने को तैयार हो गया।

शंकर शास्त्री चाहता था कि या तो राक्षस उसे जान बख्श दे या वह इसके साथ जंगल से बाहर तक जाने को तैयार हो जाये। राक्षस एक बार किसी को पकड़ ले तो वह कभी नहीं छोड़ता। इसलिए यह संभव नहीं था कि राक्षस उसे छोड़ दे। शंकर शास्त्री पंडित होने के नाते यह बात भली भांति जानता था। इसलिए राक्षस को किसी प्रकार जंगल से बाहर ले जाने के लिए वह अपनी वाक-चातुरी और तर्क बुद्धि के सारे पैंतरों का प्रयोग कर रहा था। उसकी अन्तिम चाल में राक्षस इस प्रकार आ गया जैसे बहेलिये के जाल में कबूतर फँस जाते हैं।

दोनों जंगल से बाहर निकलने के मार्ग पर चल पड़े। जब तक शंकर शास्त्री जंगल के अन्दर चल रहा था, वह भयभीत होकर घबरायी आँखों से इधर-उधर देखता हुआ बड़ी सावधानी से आगे

बढ़ रहा था। जंगल से जैसे ही वह बाहर आया, निडर होकर चलने लगा और निश्चिंत और बेपरवाह-सा कुछ गुनगुनाने लगा।

दानव को उसके इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। राक्षस के इसका कारण पूछने पर शंकर शास्त्री ने मुस्कुराते हुए कहा,-''जंगल में सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं का बराबर भय बना रहता है। वे अचानक किसी भी दिशा से आ सकते हैं और आक्रमण कर सकते हैं। लेकिन वे जंगल की सीमा से बाहर नहीं आते। अब हम जंगल की सीमा को पार कर चुके हैं, इसीलिए मैं अब निर्भय हो गया हूँ।''

''क्या जंगली पशु जंगल से बाहर नहीं आते?'' राक्षस ने बड़ी सरलता से प्रश्न किया।

शंकर शास्त्री ने नीति वाचक ज्ञानी की तरह मुस्कुराते हुए कहा,-''दानवेन्द्र! मछलियाँ सहज रूप से जल में रहती हैं। मनुष्य सहज रूप से ग्राम और नगर में रहते हैं। उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, भेड़िये आदि जंगली पशु जंगल में ही निरापद अनुभव करते हैं। यदि वे ग्रामों या नगरों में आ जायें तो मनुष्य उन्हें घेर कर मार डालते हैं। उसी प्रकार यदि मनुष्य जंगल में चले जायें तो हिंसक पशु उन्हें मार कर खा जाते हैं। इस कारण प्रकृति ने जिसके लिए जो स्थान बनाया है, वहीं रहना चाहिये। यही सृष्टि का धर्म है।''

जंगल पार करने के बाद थोड़ी दूर तक और जाने पर एक नदी के किनारे एक गुरुकुल आश्रम मिला। वहाँ कुछ विद्यार्थी व्यायाम कर रहे थे और कुछ धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहे थे। कुछ छात्र खड्ग और कुछ भाले का अभ्यास कर रहे थे। दूर से एक ऊँचे आसन पर आसीन उनके गुरु प्रतिभ अपने शिष्यों के कौशल का प्रेक्षण कर रहे थे।

दीर्घबाहु को यह दृश्य बहुत विचित्र और आश्चर्यजनक लगा। उसने जिज्ञासा प्रकट की,-''यह सब क्या हो रहा है पंडित?''

शंकर शास्त्री गुरु को अभिवादन करने के बाद बोला,-''यह गुरुकुल है, गुरु का विद्या आश्रम है। यहाँ गुरु की देख-देख में राज्य के प्रमुख व्यक्तियों के पुत्रों एवं राजकुमारों को शस्त्र और शास्त्र विद्या सिखाई जाती है। मातृ देवोभव, पितृ देवो भव और गुरु देवोभव हमारे आदर्श हैं। माता-पिता के समान ही गुरु भी पूज्य है। अयोध्या, कोसल और अवन्तीपुर के राजा इनके शिष्य हैं। यदि ये चाहें तो संसार पर राज्य कर सकते हैं।''

''जब गुरु प्रतिभ राजा बन कर सब प्रकार का सुख भोग सकता है, तो फिर यह संन्यासी के समान दरिद्र जीवन क्यों व्यतीत कर रहा है?'' दीर्घबाहु ने आश्चर्य से पूछा।

"गुरु प्रतिभ गुरु हैं, ज्ञानी हैं, सब प्रकार की शस्त्र और शास्त्र विद्याओं के ज्ञाता हैं। इनका धर्म ज्ञान देना है, राज्य करना नहीं। ये अपने गुरु-धर्म का पालन कर रहे हैं।" शंकर शास्त्री ने आगे बढ़ते हुए कहा। थोड़ी देर रुक कर आसमान की ओर देखते हुए उसने फिर कहा,-"सारा सृष्टि-चक्र इसी धर्म पर टिका हुआ है। सूर्य, बादल, पवन सभी अपने-अपने...."

तभी दीर्घबाहु शंकर शास्त्री की बात सुनते-सुनते अचानक पीछे मुड़ कर जंगल की ओर तेजी से चल पड़ा। पंडित ने अपना वाक्य बीच में अधूरा छोड़ दिया और राक्षस को पुकारा,-"अरे दानवेन्द्र! कहाँ जा रहे हो? वापस आओ।" लेकिन वह देखते-देखते आँखों से ओझल हो गया।

वेताल ने विक्रमार्क को यह कहानी सुना कर प्रश्न किया,-"राजन! दीर्घबाहु राजा बनने के उद्देश्य से जंगल छोड़ कर शंकर शास्त्री के साथ राजधानी जा रहा था। लेकिन गुरु प्रतिभ के बारे में सुन कर जंगल में वापस क्यों चला गया? क्या उसे इस बात का डर था कि शस्त्र का अभ्यास करने वाले छात्र या उनके गुरु उसे मार डालेंगे? या उसे यह सन्देह हो गया कि शंकर शास्त्री अपने प्राण की रक्षा के लिए उसके साथ छल-कपट करके मार डालेगा। यदि यह सच है तो दीर्घबाहु उसे क्यों नहीं मार कर खा गया। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। यदि इन प्रश्नों के उत्तर जानते हुए भी चुप रहोगे, तो तुम्हारे सिर के टुकड़े हो जायेंगे।"

विक्रमार्क ने अपना मौन भंग करते हुए कहा,-"दीर्घबाहु के प्रश्नों का उत्तर देते समय शंकर शास्त्री जिस प्रकार अपनी तर्क बुद्धि से धर्म की प्रकृति समझा रहे थे, उससे उसे अपने धर्म का संकेत मिल गया। जब उसे यह पता चला कि वन्य पशु का धर्म वन में रहना है, मनुष्य का स्वाभाविक धर्म ग्राम और नगर में रहना है, गुरु का धर्म शिष्य को ज्ञान देना है तो राक्षस का धर्म भी जंगल और गुफा का जीवन होना चाहिए, राजा का जीवन नहीं। राजा बनने की उसकी इच्छा राक्षस-धर्म के विरुद्ध है। जैसे ही उसे अपने धर्म का बोध हुआ, वह तुरन्त जंगल की अपनी गुफा में लौट गया।"

राजा विक्रमार्क के मौन-भंग में सफल वेताल शव सहित अदृश्य हो गया और पुनः पेड़ पर जा बैठा।

-कल्पित, शिवशंकर त्रिपाठी की रचना के आधार पर।
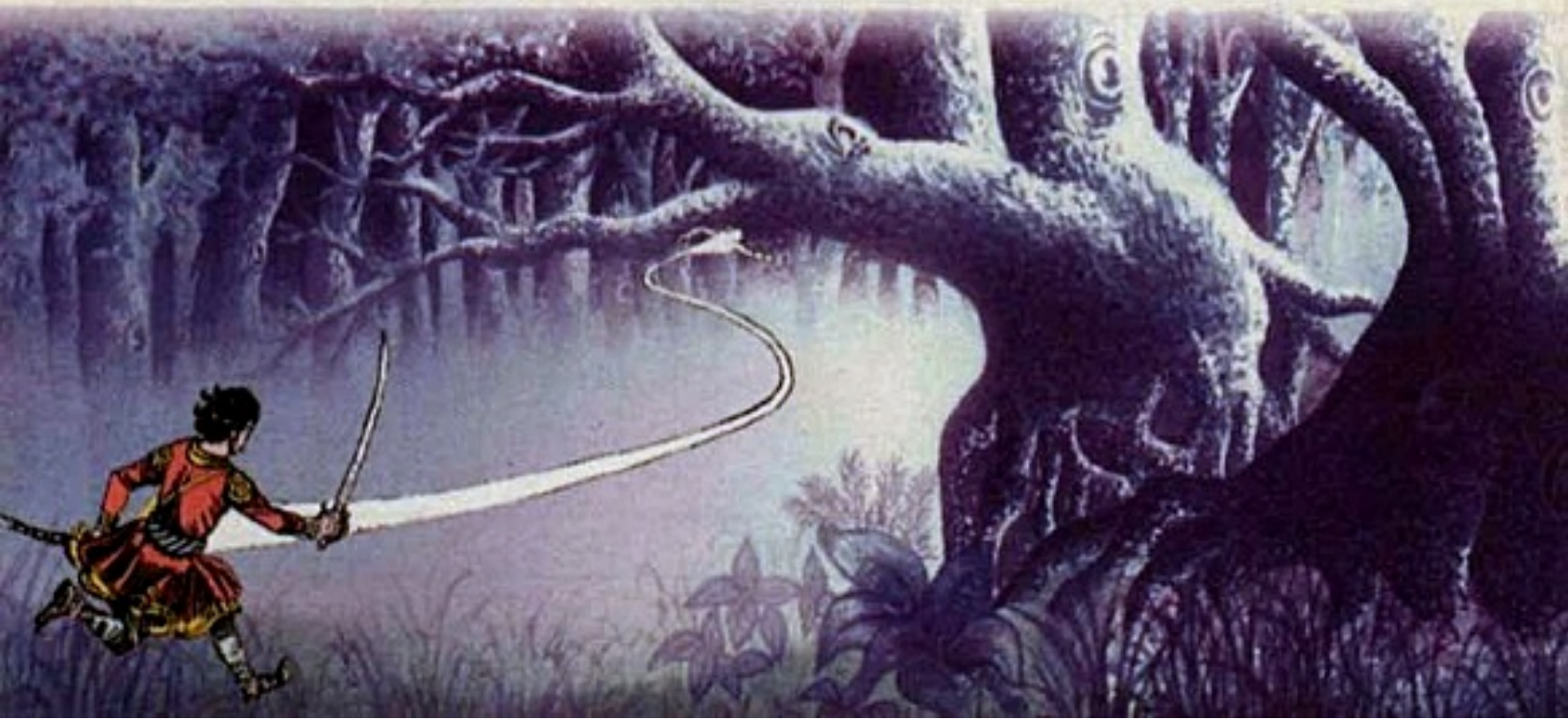
# अक्लमंद बालक

हेलापुरी निवासी अशर्फी लाल का बेटा माधव, जो अभी आठ साल का ही था, गाँव भर में सबसे अक्लमंद बालक माना जाता था। उसकी अक्लमंदी की सभी तारीफ करते।

अन्य सभी बातों में उसकी अक्लमंदी की तारीफ होती लेकिन सिक्कों की पहचान के मामले में लोग उसे बेअक्ल मानते थे। यह बात तब सामने आई जब एक दिन अशर्फी लाल का एक रिश्तेदार शाम लाल उसके घर आया। उसने भी माधव की अक्लमंदी की बड़ी चर्चा सुनी थी। उसने उसकी बुद्धि जाँचने की दृष्टि से अपनी जेब से एक चाँदी का और एक ताम्बे का-दो सिक्के निकाले और उसके सामने रखते हुए कहा,-''इनमें से एक सिक्का तुम्हारा है, कोई भी एक ले लो।''

माधव ने ताम्बे का सिक्का उठा कर रख लिया। शाम लाल को यह जान कर बड़ी निराशा हुई कि बड़ा अक्लमंद बालक माना जाने वाला यह भी नहीं जानता.कि ताम्बा और चाँदी में से कौन-सा अधिक मूल्यवान है। वह मन ही मन बालक की मूर्खता पर हँसा और चाँदी का सिक्का जेब में डाल कर चला गया।

दूसरे दिन यह बात गाँव भर में फैल गई कि माधव वास्तव में अक्लमंद नहीं बल्कि मूर्ख है, क्योंकि वह ताम्बे और चाँदी में वास्तविक अन्तर की पहचान नहीं रखता। इस बात में कितनी सचाई है, यह जानने के लिए गाँव के सभी लोग उसके पास ताम्बे और चाँदी का सिक्का रखते। माधव हर बार तांबे का ही सिक्का उठाता। सभी उसकी मूर्खता पर हँसने लगते।

सर्वेश्वर

पंडितों ने धर्मनिष्ठ व्यक्ति के हत्यारे के लिए, मद्यप के लिए, तस्कर के लिए तथा महाव्रत भंग करने वाले के लिए प्रायश्चित का विधान बताया है, किन्तु कृतघ्न के लिए क्षमा का कोई विधान नहीं है। - पंचतंत्र

एक दिन अशर्फी लाल का एक अन्य रिश्तेदार राम लाल आया। वह उसकी पत्नी का चचेरा भाई था। वह अशर्फी लाल के घर पर कई दिनों तक ठहरा। उसे भी अक्लमन्द माधव की मूर्खता के बारे में गाँव वालों से पता चला। उसने इस बात की स्वयं परीक्षा लेनी चाही। इसलिए उसने भी अपनी जेब से दो सिक्के निकाले, जिनमें एक चाँदी का था और एक ताम्बे का। और दोनों को माधव के सामने रखते हुए कहा, - ''बेटे, इन दोनों में से जो तुम्हें पसन्द हो, रख लो।'' माधव ने इस बार भी ताम्बे का ही सिक्का लिया। लेकिन और लोगों की भाँति राम लाल उसे मूर्ख समझ कर उस पर हँसा नहीं बल्कि गंभीर होकर बोला, - ''माधव! तुम्हारी अक्लमंदी की कहानियाँ मैंने बहुत सुनी हैं। फिर भी हर बार तुम ताम्बे का ही सिक्का क्यों लेते हो? क्या तुम्हें चाँदी और ताम्बे के मूल्य का अन्तर नहीं मालूम?''

माधव चुपचाप मुस्कुराता रहा। कुछ बोला नहीं। रामलाल के बहुत हठ करने पर आखिर उसने मुँह खोला, -''मामा, यदि चाँदी का सिक्का उठाता तो एक बार ही न? बार-बार मेरी अक्लमंदी की कोई परीक्षा तो न करता। लेकिन अब ताम्बे के सिक्कों का ढेर लग गया है, जिनका मूल्य चाँदी के एक सिक्के से कई गुना अधिक है। अब आप ही बताइए कि मैं मूर्ख हूँ या अक्लमंद।''

# जब चोर हँस पड़ा

एक गाँव में एक वाक्पटु बौना रहता था। हास-परिहास और हाजिरजवाबी उसके स्वभाव में कूट-कूट कर भरी थी। वह गाँव-गाँव घूमता और लोगों को हँसा कर कुछ पैसे कमा लेता था। यही उसकी आजीविका का साधन था। लोग उसे वामन भट्ट कह कर पुकारते थे।

एक दिन दोपहर में वह अपने गाँव से दूसरे गाँव में जा रहा था। अधिक गर्मी के कारण वह एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने के लिए बैठ गया। तभी उसने दूर से किसी व्यक्ति को तेजी से अपनी ओर आते हुए देखा। उसकी मूछें घनी थीं और वह अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी लिए था। उसकी चाल से वामन भट्ट को विश्वास हो गया कि हो न हो वह चोर है। इसलिए जब वह उसके निकट आ गया तो उससे बचने के लिए उसे सुना कर वामन भट्ट ने कहा,-"देखो, भगवान कितने दयालु हैं! सूर्य का ताप भी दे रहे हैं और इससे बचने के लिए ठंढी छावं भी।"

चोर ने उसकी बात सुन कर कहा,-"मैं जानता हूँ कि तुम वामन भट्ट हो और वाक् चातुरी से लोगों को हँसा कर उनसे पैसे ऐंठ लेते हो। लेकिन तुम्हारा यह वाग्जाल मुझ पर नहीं चलेगा। हँसी-मज़ाक से मुझे सख्त नफरत है। जीवन में आज तक मैं कभी हँसा नहीं। मेरे दादा कहा करते थे कि हँसी-मज़ाक विपत्तियों का पिटारा है। इसलिए मुझे हँसाने का प्रयास मत करो और तुम्हारे थैले में जो भी माल-मत्ता है, उसे मेरे हवाले कर दो!"

इतना कह कर चोर ने उसके हाथ से थैला झपट लिया।

जैसे ही वह जाने लगा कि पलट कर फिर उसने कहा,-"तुम्हारे जैसे खतरनाक लोगों को छोड़ देने से मैं खतरे में पड़ जाऊँगा। इसलिए मैं तेरा सिर काट डालूँगा।" इतना कह कर चोर ने कुल्हाड़ी उठाई।

लेकिन वामन भट्ट ने बिना डरे हाथ के संकेत से उसे रोकते हुए तपाक से कहा,-"हाँ हाँ! भैया, यह क्या कर रहे हो? मेरा सिर मत काटो। मैं तो पहले ही इतना नाटा हूँ। और नाटा हो जाऊँगा। लोग मेरा मज़ाक उड़ायेंगे।"

वामन भट्ट की सहज हाजिरजवाबी और उपहास युक्त बात सुनकर चोर को हँसी आ गई। वह जोर से ठठा कर देर तक हँसता रहा।

फिर बोला,-"जब से होश संभाला है, आज पहली बार हँस रहा हूँ। तुम सचमुच हाजिरजवाब और वाक्पटु हो। शाबाश! यह लो इनाम।"

इतना कह कर चोर ने वामन भट्ट का थैला लौटा दिया। और आगे अपने रास्ते चला गया।

—निर्मला पाणिग्रही

[**अब तक:** हैहय वंश के कौडिन्य राजाधिपति पौरस्वत ने दक्षिणा पथ के सभी राज्यों को जीत कर एक बृहत साम्राज्य की स्थापना की। लेकिन उसके अयोग्य उतराधिकारियों ने साम्राज्य की अखण्डता की रक्षा नहीं की। दसवीं पीढ़ी के राजा श्रीदत्त के समय तक सभी सामन्तों और राजाओं ने कौडिन्य से अलग होकर अपनी-अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। और कौडिन्य पुन: साम्राज्य से सिमट कर एक छोटा राज्य मात्र रह गया। जो राजा कभी कौडिन्य साम्राज्य के अधीन थे, वे ही अब मिल कर कौडिन्य पर आक्रमण करने की योजना बनाने लगे। कौडिन्य के तत्कालीन राजा श्रीदत्त का पुत्र विजय दत्त उस समय गुरुकुल में अपनी शिक्षा पूरी कर कुछ दिनों में लौटने ही वाला था कि उसे अपने पिता से तत्काल राजधानी लौट आने का सन्देश मिला। श्रीदत्त ने अपने पुत्र को अपने पड़ोसी राज्यों के मनसूबों और चालों की जानकारी दी।... **इसके बाद**]

महाराज ने पुनः कहना आरम्भ किया,-"मराल ने अनुभव किया कि उसके बेटे की हठ से समस्या और जटिल हो सकती है। वह निर्णय नहीं कर सका कि बेटे को क्या कहे। वह अपने बेटे को अप्रसन्न भी नहीं देखना चाहता था। इसलिए उसने इस बात पर राजनीतिक दृष्टिकोण से सोचना शुरू कर दिया और कालिन्दी नरेश माधवसेन के अन्तरंग जीवन की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने का निश्चय किया।

"गुप्तचरों से प्राप्त जानकारी से उसे यह ज्ञात हुआ कि इन्दुमती के स्वयंवर में माधवसेन को मात्र औपचारिकता के लिए बुलाया गया था। माधवसेन को भी इन्दुमती के साथ विवाह में कोई रुचि नहीं थी। लेकिन जब इन्दुमती ने उसके गले में वरमाला डाल दी तो उसे विवाह करना पड़ा। विवाह के पूर्व कालिंदी और कौडिन्य राज्यों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं थे। इन्दुमती की मृत्यु के बाद जब माधवसेन ने अन्य राजकुमारी वसुमती से विवाह किया तब तो दोनों के सम्बन्ध और फीके पड़ गये। साथ में उसे यह भी पता चला कि माधव सेन राजसत्ता और ऐश्वर्य का महत्वाकांक्षी है।

लक्ष्मी गायत्री

''माधव सेन की इस दुर्बलता से लाभ उठाने केलिए मराल ने एक रणनीति बनाई। माघ शुक्ल सप्तमी के दिन अपने कुल देवता भगवान भास्कर की रथयात्रा में सम्मिलित होने के लिए उसने माधव सेन को विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित किया और समारोह में अवश्य पधारने के लिए विशेष रूप से आग्रह किया।

''माधव सेन को चम्पक राज्य की ओर से इससे पूर्व कभी निमन्त्रित नहीं किया गया था। इसलिए इस आमन्त्रण पर उसे आश्चर्य हुआ। लेकिन भगवान भास्कर का उत्सव समझ कर माधव सेन उसमें परिवार सहित सम्मिलित हो गया।

''चम्पक राज्य में रथ सप्तमी के दिन प्रतिवर्ष रथ यात्रा का यह उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। परम्परा के अनुसार उस दिन प्रात:काल सूर्य भगवान की स्वर्ण प्रतिमा एक विशाल रथ में सजायी जाती। और राजा तथा युवराज के अतिरिक्त राजा के मनोनीत राजपरिवार के पाँच अन्य प्रमुख व्यक्तियों द्वारा यह रथ नगर के मुख्य मार्गों एवं वीथियों पर खींचा जाता।

''यथापूर्व इस वर्ष भी उत्सव का आयोजन किया गया। एक विशाल रथ में सूर्य भगवान की स्वर्ण प्रतिमा सजा दी गई और रथ में रथ को खींचने वाले सात व्यक्तियों के लिए सात रस्सियाँ बाँध दी गईं। उत्सव के आरम्भ में चम्पक के राजा मराल ने घोषणा की कि इस वर्ष इस शुभ अवसर पर कालिंदी नरेश माधव सेन हमारे विशिष्ट अतिथि हैं। और राज अतिथि के रूप में रथ खींचनेवाले सात व्यक्तियों में से ये भी एक हैं। इन्होंने हमारा आतिथ्य स्वीकार करके और रथ यात्रा के उत्सव में भाग लेकर न सिर्फ इस महोत्सव को, बल्कि हमारे पूरे राज परिवार को गौरवान्वित किया है। यद्यपि हमारी परम्परा के अनुसार सिर्फ हमारे राज परिवार के लोग ही रथ को खींचते आये हैं, लेकिन हमारे मुख्य अतिथि के रूप में ये हमारे राज परिवार से भी अधिक महत्व रखते हैं। शास्त्रों के अनुसार अतिथि देव-तुल्य होता है। अत: ये हमारे राज परिवार से अधिक सम्मानीय हैं। इसलिए मैं कालिंदी नरेश माधवसेन से अनुरोध करता हूँ कि भगवान भास्कर का रथ खींचने के लिए सर्वप्रथम ये ही रथ के सामने आयें।

''मराल ने रथ खींचने के लिए स्वयं माधवसेन की कमर में रस्सी बाँधी। रथयात्रा के बाद अतिथि के सम्मान में एक विशिष्ट भोज का आयोजन किया गया। माधव सेन मराल का इतना सम्मान पाकर

बहुत प्रसन्न हुआ और उसके प्रति कृतज्ञता से भर गया। उन्होंने अन्य अतिथियों के समक्ष इतनी प्रशंसा और सम्मान के लिए मराल का आभार व्यक्त किया। लेकिन आभार व्यक्त करते समय माधव सेन को लगा जैसे मराल उसकी बातों को महत्वहीन समझ रहे हों। इससे माधव सेन के हृदय को थोड़ा धक्का लगा। बाद में जब दोनों एकान्त में मिले तो माधव सेन ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा,-'राजन! भोज के उपरान्त जब मैं आप के आदर-भाव के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर रहा था, तब आप कुछ अन्यमनस्क दीख पड़े। कहीं मेरी बात से आप को कोई कष्ट तो नहीं हुआ।'

''मरालभूपति आश्चर्य से बोले,-'क्या कह रहे हैं आप! भला ऐसा कभी हो सकता है! आप हमारे पूज्य अतिथि हैं। क्या मैं ऐसी धृष्टता अपने अतिथि के साथ कर सकता हूँ? दरअसल मैं उस समय कुछ और सोच रहा था और आप से ही कुछ कहना चाह रहा था। इसीलिए आप को ऐसा लगा होगा।'

'आप क्या कहना चाहते थे, निः संकोच बताइए।' माधवसेन ने कृतज्ञ भाव से कहा।

'उस समय भी यही सोच कर मैंने अपने आप को रोक लिया कि आपको मेरी इच्छा पूरी न कर सकने के कारण आप को कष्ट होगा, क्योंकि सचमुच वह होने योग्य कार्य नहीं है। वैसे आप के लिए हो सकता है वह छोटा-सा कार्य हो, लेकिन हमारे पूरे राज परिवार के लिए सौभाग्य होगा। यदि किसी कारणवश वह संभव नहीं हुआ तो आप के मन में यह मलाल रह जायेगा कि मुझे इस राज्य ने इतना सम्मान दिया और मैं इनकी एक छोटी-सी

बात न रख सका।' मरालभूपति ने माधव सेन को अपने वाग्जाल में फँसाने का प्रयास किया।

'आप कहिये तो सही।' मुस्कुराते हुए माधवसेन ने कहा।

''बात यह है कि...,'' संकोच करते हुए मराल भूपति ने कहना शुरू किया, 'जब से मेरे पुत्र ने आप की राजकुमारी के रूप-गुण की चर्चा सुनी है, तब से वह उसी से विवाह करने का हठ कर रहा है। मैंने उसे समझाया कि कौडिन्य राज्य से उनका सम्बन्ध है और वहाँ का युवराज भी विवाह योग्य हो गया है, इसलिए शायद उसी से विवाह की बात चल रही हो।

'लेकिन मेरे पुत्र ने कहा कि कौडिन्य कभी सार्वभौम रहा होगा परन्तु अब वह कालिंदी के अनुरूप उसका प्रभाव नहीं रहा। वहाँ के दुर्बल

और अयोग्य शासकों के कारण कौडिन्य की शक्ति क्षीण हो गई है। इसलिए श्रीलेखा के गुण के अनुरूप वहाँ का युवराज योग्य वर नहीं होगा। रूप-सौन्दर्य पर वीरों का अधिकार होता है और वे ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। जिस दिन वह मुझे वरण करेगी, मैं दक्षिणा पथ के सभी राज्यों को जीत कर एक विशाल साम्राज्य की उसे महारानी बनाऊँगा। इतना ही नहीं, उसके पुत्रहीन पिता को उनके अपने पुत्र के समान श्रद्धा और प्यार दूँगा तथा कौडिन्य राज्य को जीत कर वहाँ के ऐश्वर्य का अर्ध भाग उन्हें भेंट कर दूँगा।'

''इतना कह कर मराल चुप हो गया और माधव सेन की मुखाकृति की ओर ध्यान से देखने लगा और यह जानने की कोशिश करने लगा कि उनके मन में इन बातों की क्या प्रतिक्रिया हो रही है।

माधवसेन ने ऐसा सोचा तक नहीं था कि मरालभूपति के मन में ऐसी बात होगी। वह इस प्रस्ताव को सुन कर स्तंभित रह गया। लेकिन धीरे-धीरे उसे इस प्रस्ताव में अपना लाभ दिखाई देने लगा। कौडिन्य के अपार ऐश्वर्य और भेंट में मिले निधि-निक्षेप के बारे में उसे भी मालूम था। कौडिन्य की दिन ब दिन गिरती अवस्था से भी वह परिचित था। वह अपने भविष्य के बारे में महत्वाकांक्षी हो उठा और सार्वभौमत्व का सपना देखने लगा।

''दोनों में कई घण्टों तक बातचीत होती रही। इस दौरान मराल ने अपनी वाकचातुरी से माधवसेन को अपनी ओर झुका लिया और कौडिन्य पर आक्रमण करने के षड्यंत्र में उसे भी शामिल कर लिया। उन दोनों के बीच माघ मास में जब समझौता होनेवाला था तब तुम्हारे गुरुकुल वास की अवधि समाप्त होने में छः महीने शेष थे। यद्यपि अब तुम्रारी शिक्षा एक महीने में पूर्ण हो जायेगी फिर भी तुम्हारे गुरु कृष्ण चन्द्र का निर्णय था कि वे तुम्हें नवरात्रि के पश्चात ही गृह भेजेंगे। यह मराल को मालूम हो गया था। इसीलिए तुम्हारे गुरुकुल से वापस आने के पूर्व ही हमारे राज्य पर आक्रमण करने की उन्होंने योजना बनाई।

''माधवसेन प्रतिवर्ष चैत्रमास में वसन्तोत्सव के अवसर पर हमारे यहाँ आता है। इस वर्ष भी वह अवश्य

आयेगा, लेकिन प्रयोजन दूसरा होगा। वह गुप्तचर्या का प्रयास करेगा और हमारे सैन्यबल का सही अन्दाज जानने के लिए विवरण एकत्र करेगा। यह भी उनके षड्यंत्र का एक भाग है। वैशाख और ज्येष्ठ मास में वे कालिंदी, चंपक और कुंद राज्यों की सम्मिलित सेनाओं को एक स्थान पर संगठित कर विशेष प्रशिक्षण देंगे। आषाढ़ में गर्मी कम हो जाती है। आकाश में बादल छा जाते हैं और वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाती है। सेनाओं की गोपनीय गतिविधि के लिए यह उपयुक्त मास है। अत: इस महीने में तीनों राज्यों की सेनाएं कौडिन्य को घेर लेंगी। यही उनकी योजना है।

"आज ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी है। इस समय तीनों सेनाएं युद्ध की तैयारियों में व्यस्त होंगी। कुछ ही दिनों में हमारी जन्मभूमि रण भूमि में बदल जायेगी। अकस्मात ऐसी स्थिति आ जाने के कारण मुझे तुम्हें अचानक बुलाना पड़ा। इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। मैं तो निराश होकर नियति के समक्ष घुटने टेक चुका था, लेकिन राजगुरु शिवानन्द ने मुझमें नई आशा और उत्साह का संचार कर दिया है।

"गुप्त चरों से जैसे ही शत्रुओं का षड्यंत्र मुझे मालूम हुआ, मैं तुम्हारे भविष्य के प्रति चिन्तित और भयभीत हो गया। मैंने तुम्हारी जन्म कुंडली गुरुदेव को दिखाई और तुम्हारे भविष्य के विषय में जानना चाहा। उन्होंने बहुत गहराई से उसका अनुशीलन किया लेकिन मुझे कुछ नहीं बताया। फिर वे अखण्ड ध्यान में बैठ गये। ध्यानावस्था में उनकी अन्तर्दृष्टि के सामने से उदित सूर्य का बिम्ब,

तीव्र गति से जाता हुआ नागराज, उज्ज्वल रूप में चमकता हुआ सुवर्ण और छ: सुन्दर कन्याएं गुजरीं।

"इन प्रतीकों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने बताया कि युवराज की कुंडली विचित्र है। उसका वर्तमान समस्याओं से घिरा है। प्राण संकटमय है। फिर भी बलशाली ग्रहों के समर्थन के कारण अन्तिम विजय उसी की होगी। लेकिन पूर्णिमा से पहले उसका यहाँ रहना आवश्यक है। कुंडली के अनुसार उसे शीघ्र ही नई निधि मिलनेवाली है। नगर के पूर्व के परती मैदान को तुम्हारे सामने ही खुदवाने के लिए उन्होंने कहा है। खोदने का निश्चित स्थान मंत्र जल छिड़क कर गुरु ही बतायेंगे।

"मैंने विशेष तौर पर इसीलिए तुम्हें बुलाया है। अच्छा हुआ, तुम समय पर आ गये। हो सकता है पूर्णिमा के दिन ही खुदाई का काम प्रारंभ करें।"

श्रीदत्त ने अपने पुत्र विजय को विस्तार से सारा विवरण सुना कर एक लम्बी सांस ली।

"लेकिन पिताश्री! जब हमारे सिर पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हों और हम शत्रुओं से घिरे हुए हों तो निधि को इतना महत्व देना और इस पर समय नष्ट करना क्या बुद्धिमानी होगी!" विजय ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा।

"मैंने भी पहले गुरु शिवानन्द के सामने यही सन्देह प्रकट किया था।" श्रीदत्त ने विजय के सन्देह का निवारण करते हुए कहा। "लेकिन फिर भी उन्होंने जोर देकर कहा कि किसी भी परिस्थिति में खुदाई के कार्य को स्थगित करना ठीक नहीं होगा। उनका विश्वास है कि इससे हमारा सब प्रकार से कल्याण होगा। उनके अनुसार इस कार्य में अधिक से अधिक तीन दिन लगेंगे। मैंने इसीलिए निश्चय किया कि गुरु शिवानन्द के आदेशानुसार ही कार्य करेंगे।"

विजयदत्त पिता के उत्तर से सन्तुष्ट होकर बोला,-"हम धर्म, न्याय और सचाई के साथ अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए यथाशक्ति प्रयास करें और इस आत्म विश्वास के साथ आगे बढ़ते जायें कि अन्त में सत्य की ही विजय होगी। स्वदेश की रक्षा में प्राणों की आहुति देने में भी पीछे नहीं हटेंगे।"

श्रीदत्त को विजयदत्त की बात बहुत अच्छी लगी। उसकी बात में उसके ऊँचे विचार और समस्त परिस्थिति के प्रति उसके स्वस्थ दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ा। श्रीदत्त ने यह भी अनुभव किया कि विजयदत्त ने जिस धैर्य, मनोभाव, गंभीरता, शान्ति और आत्म विश्वास के साथ आनेवाली आपत्ति का विवरण सुना और

जिस प्रकार वाणी या चेहरे के भाव में बिना घबराहट या प्रतिक्रिया के, अपने को संयत रखा, उससे इसमें छिपे एक सम्राट के योग्य परिपक्व व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। वह मन ही मन इसकी उत्तम शिक्षा-दीक्षा के लिए गुरु कृष्ण चन्द्र के प्रति कृतज्ञता अनुभव कर रहा था।

तभी द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि एक युवक महाराज से तुरन्त मिलने का हठ कर रहा है और यह बता रहा है कि लक्ष्मी देवी का पत्र आ गया।

महाराज ने उसे अन्दर बुलाने का संकेत दिया। युवक अन्दर आते समय महाराज के पास विजयदत्त को बैठे देख कर ठिठक गया। विजय दत्त ने उसे देर तक एक टक देखा और फिर उसे पहचानते हुए पिता से कहा,-"पिताश्री। लक्ष्मी देवी का पत्र लानेवाला युवक और कोई नहीं बल्कि स्वयं श्रीलेखा है।"

महाराज ने आगे बढ़ कर अपनी धर्म बहन की बेटी और अपनी भावी बहू को प्यार से गले लगा लिया और पूछा,-"सब कुशल तो है! तुम अकेली, इस वेश में!"

"माँ ने कहला भेजा है कि विपरीत परिस्थितियों में कोई अन्य विकल्प न देख कर अपनी बेटी को आप की शरण में भेज रही हूँ। इसकी रक्षा करना अब आप का दायित्व है। मानव धर्म के नाते यह आप की बेटी है और सामाजिक धर्म से यह आप की धरोहर, आप की बहू है।" आँसू बहाते हुए श्रीलेखा ने कहा।

श्रीलेखा की बातें सुनकर महाराज विह्वल हो गये। सोचा, किसी अवश्यम्भावी संकट के कारण ही वसुमती ने ऐसा जोखिम भरा कदम उठाया होगा।
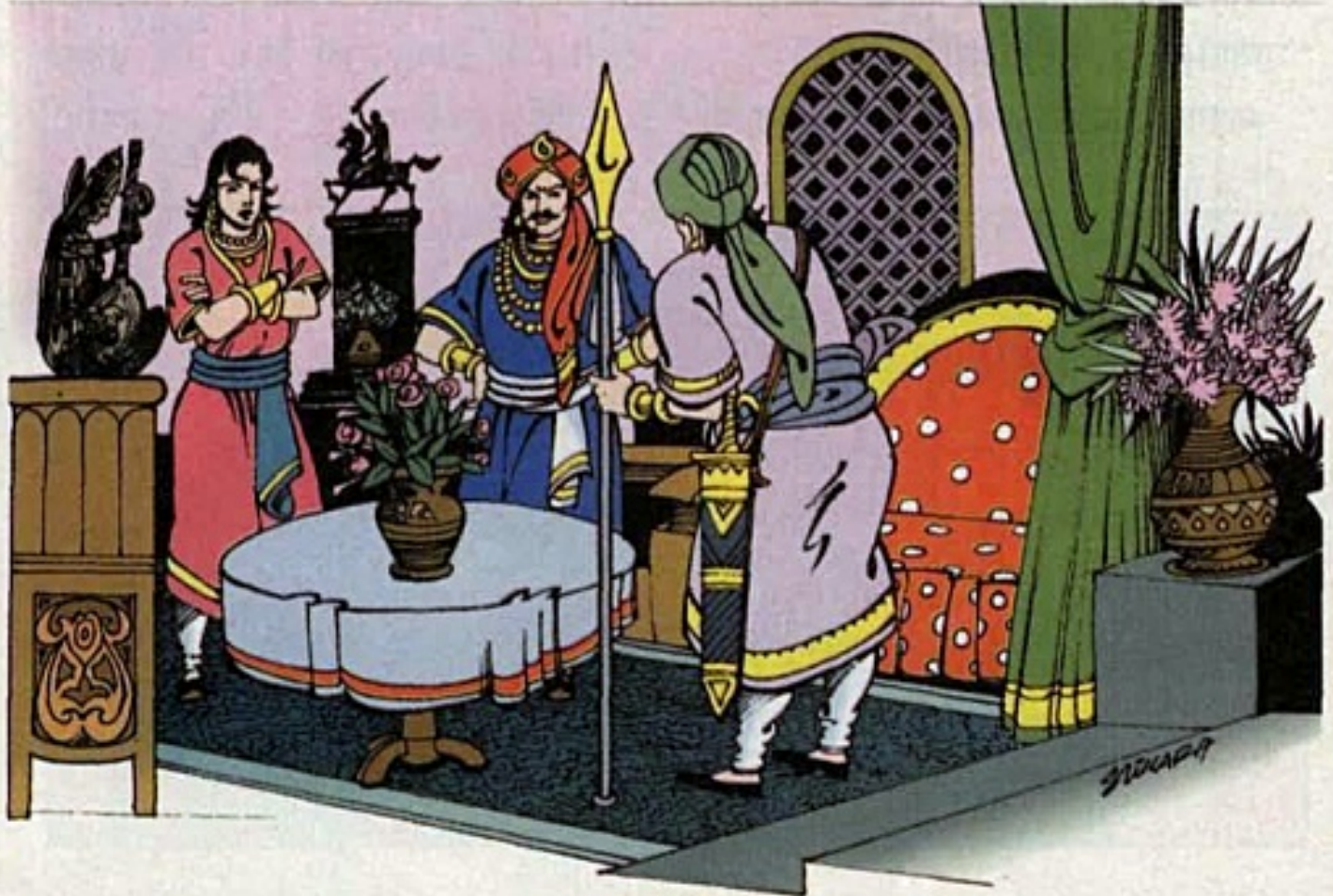
फिर श्रीलेखा को आश्वस्त करते हुए बोले,-"माँ ने तुम्हें ठीक स्थान पर भेजा है बेटी। तुम्हारा वास्तविक घर यही है और इस पर तुम्हारा अधिकार है।"

फिर इस घटना के दूसरे पक्ष पर विचार करते हुए उन्होंने मन ही मन संतोष व्यक्त किया और विजयदत्त से कहा,-"जिस परिणाम के लिए हमें कितनी बुद्धि और शक्ति लगानी पड़ती, वह भागवत कृपा से सहज ही हो गया। श्रीलेखा का अनायास आगमन तुम्हारे लिए शुभ संकेत है। हम क्षत्रियों के लिए गांधर्व विवाह धर्म शास्त्र के अनुकूल है। ऐसी परिस्थिति में इसके अतिरिक्त हम और कुछ कर भी नहीं सकते। हर क्षण बिगड़ते हालात में कुछ नहीं कहा जा सकता कि कल क्या होगा। इसीलिए मेरा तो सुझाव यह है कि तुम दोनों इसी समय गंधर्व रीति से परिणय बन्धन में बंध जाओ।"

फिर उन्होंने श्रीलेखा की ओर देख कर पूछा,-"तुम्हारा क्या विचार है, बेटी?"

महाराज की बातें सुन कर श्रीलेखा का मुरझाया चेहरा खिल उठा। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण जो आशा निष्प्राण हो गई थी, मानों उसे फिर से जीवन मिल गया। उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह इतना शीघ्र और इतनी आसानी से अपनी मंजिल तक कैसे पहुँच गई। उसने एक बार विजयदत्त की ओर देखा, फिर नजरें झुका लीं।

विजयदत्त ने एक बार पिता की ओर देखा। उनकी आँखों में संभावी अनिष्ट की चिंता और वर्तमान की खुशी धूपछाँव की तरह झिलमिला रही थी। "जैसी आप की इच्छा।" उसके मुँह से अनायास ही ये शब्द निकल पड़े।

बेटे की स्वीकृति मिलते ही आनन्द-विभोर होकर महाराज ने कहा,-"शुभस्य शीघ्रम्। गांधर्व विवाह के लिए संकल्प-शक्ति ही शुभ मुहूर्त है।" इतना कह कर उन्होंने श्रीलेखा का हाथ विजयदत्त के हाथ में दे दिया। पाणिग्रहण होते ही दोनों ने महाराज के चरण-स्पर्श किये और उनका आशीर्वाद ग्रहण किया। (क्रमशः)

# पंडित को अपनी बोली याद आई
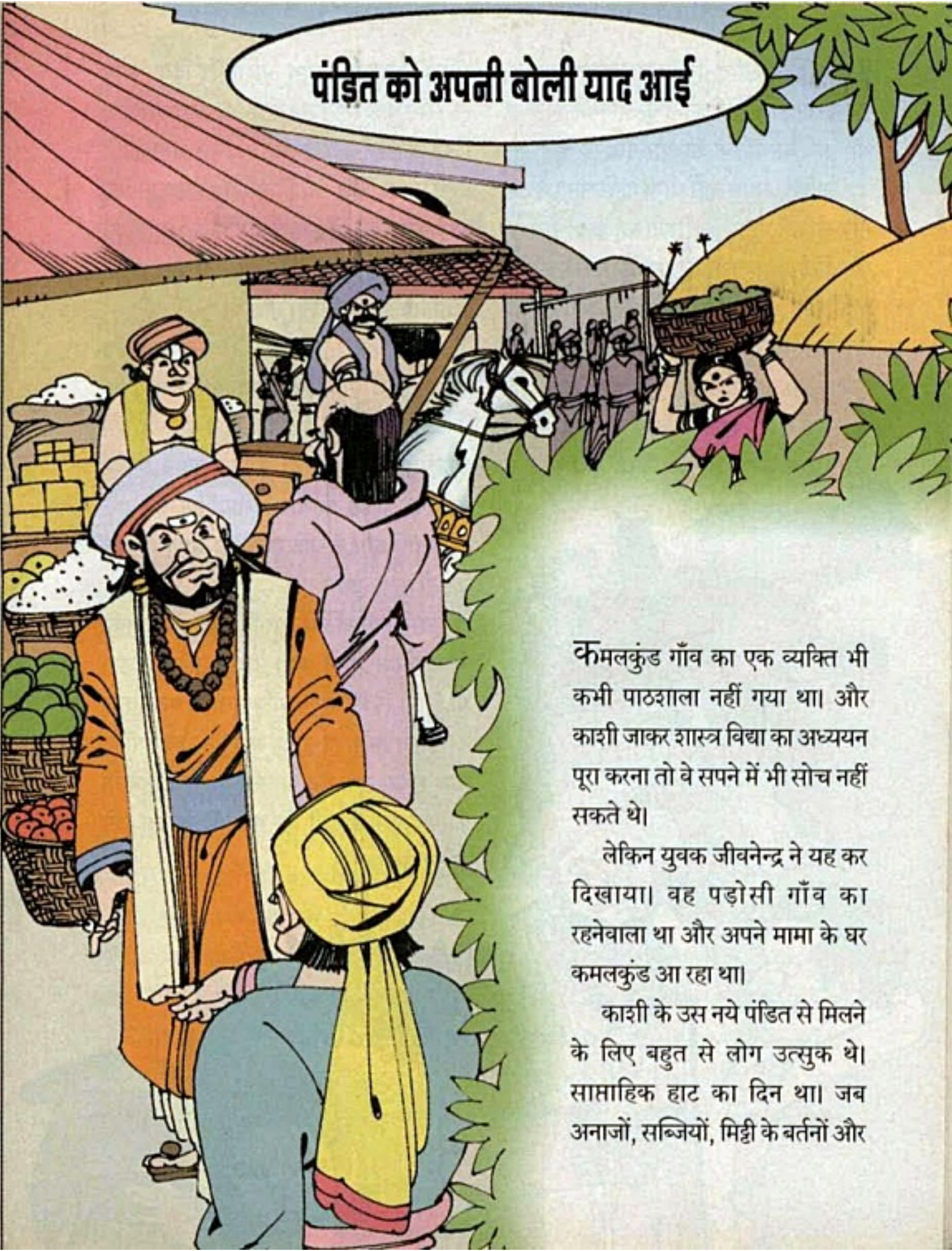
कमलकुंड गाँव का एक व्यक्ति भी कभी पाठशाला नहीं गया था। और काशी जाकर शास्त्र विद्या का अध्ययन पूरा करना तो वे सपने में भी सोच नहीं सकते थे।

लेकिन युवक जीवनेन्द्र ने यह कर दिखाया। वह पड़ोसी गाँव का रहनेवाला था और अपने मामा के घर कमलकुंड आ रहा था।

काशी के उस नये पंडित से मिलने के लिए बहुत से लोग उत्सुक थे। साप्ताहिक हाट का दिन था। जब अनाजों, सब्जियों, मिट्टी के बर्तनों और

मिठाइयों की खरीद-बिक्री का बाजार गर्म था, तब वे लोग, जिन्हें जीवनेन्द्र के आगमन की खबर थी, बार-बार सड़क की ओर देख रहे थे।

आखिर, सूर्यास्त से थोड़ा पहले लोगों ने उसे गाँव की ओर आते हुए देखा। वह हल्के पीले रंग की धोती और चटकीले नारंगी रंग की कमीज पहने हुआ था। उसकी सुकतरित दाढ़ी उसकी पगड़ी से मेल खा रही थी। वह पंडित से अधिक दुल्हा जैसा लग रहा था।

लोगों ने सिर झुका कर उसे नमस्कार किया और उसने उनके सिर पर दायां हाथ रख कर सौम्य मुस्कान के साथ आशीर्वाद दिया। साथ ही उसने कुछ संस्कृत स्तोत्रों का उच्चारण किया जिसे किसी ने नहीं समझा। फिर भी लोगों ने इसे बहुत महत्व दिया, क्योंकि इससे उसका पांडित्य झलक रहा था। एक विद्वान से मिलना या उससे परिचित होना अथवा उससे बातचीत करना आखिरकार एक विशेष बात थी।

लेकिन जब वह गाँववालों से बात करने लगा तो उन सीधे-सरल लोगों को पता न चला कि वे क्या करें, क्योंकि वह संस्कृत में बोल रहा था। श्रोता मुँह बाए खड़े थे। एक व्यक्ति ने साहस बटोर कर पंडित को याद दिलाया कि गाँव वाले अनपढ़ हैं और वे यदि इन्हीं की भाषा में बात करें तो कृपा होगी।

उसने स्वीकृति में सिर हिलाया और उनकी भाषा में बात करने लगा। लेकिन उसकी उड़ान भी इतनी ऊँची थी कि गाँववालों के पल्ले कुछ न पड़ा। वे इतना ही समझ सके कि पाँच वर्षों के लम्बे समय तक महा पंडितों के बीच रहने के कारण आम आदमी की भाषा में बोलना उसे कठिन लग रहा है।
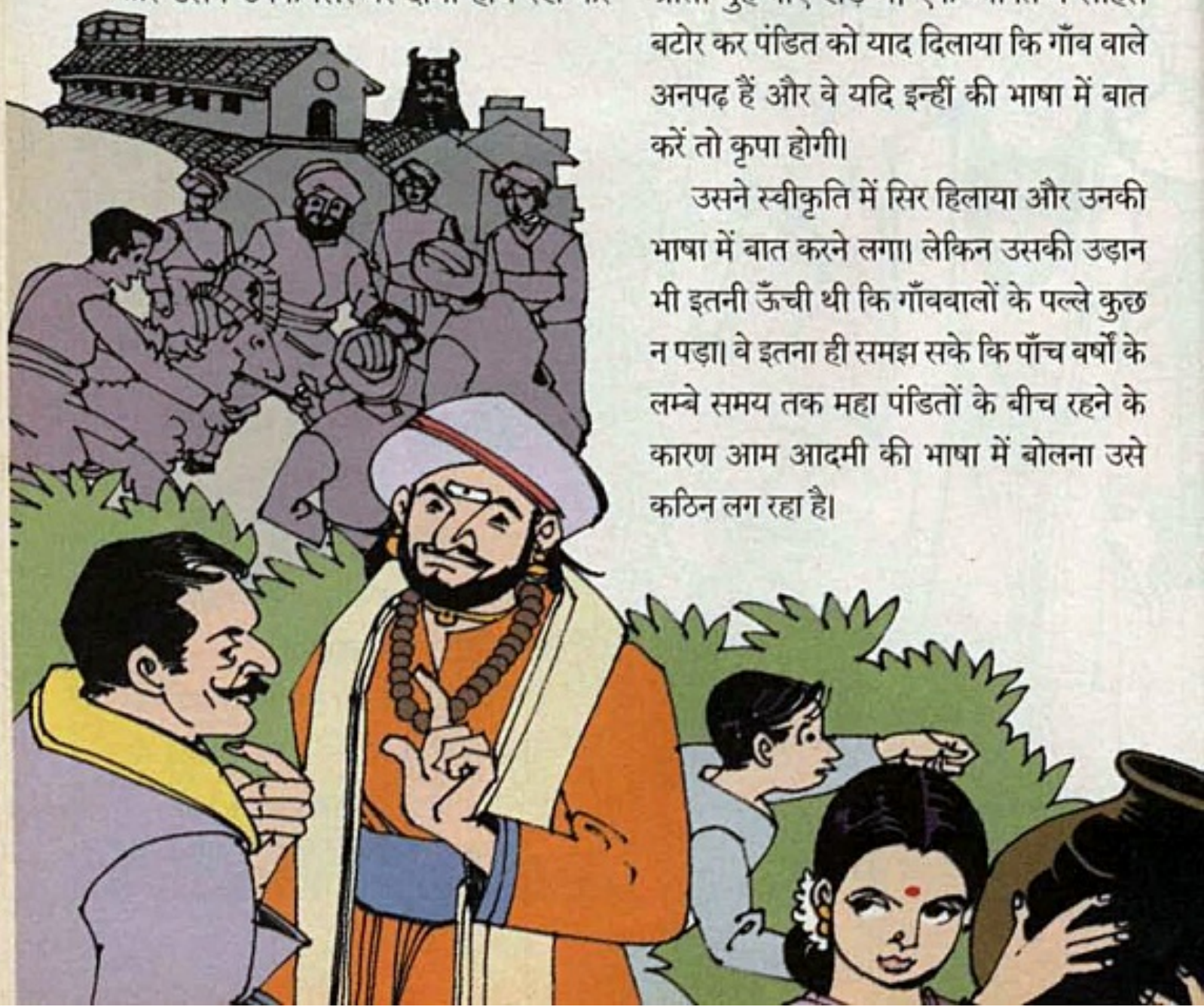
लेकिन श्रोताओं में कुछ लोगों को यह सन्देह था कि सिर्फ पाँच वर्षों में कैसे कोई अपनी मातृ भाषा को भूल सकता है।

जहाँ यह युवक पंडित खड़ा था, वहाँ से कुछ गज की दूरी पर कुछ लोग दो भेड़ों की लड़ाई का आनन्द ले रहे थे। अचानक एक भेड़ पंडित की ओर आकर्षित हुआ। सम्भवतः उसकी भड़कीली पोशाक ने दूसरे भेड़ से लड़ने की अपेक्षा उसे चुनौती देने के लिए उकसाया हो।

यह उसकी ओर बढ़ा और उस पर आक्रमण करने के लिए उसके सामने अपनी स्थिति ठीक करते हुए अपने सिर को नीचे झुकाया।

लेकिन हर झुके हुए माथे को आशीर्वाद देने के अभ्यस्त युवा पंडित ने एक आवश्यक मुद्रा के रूप में अपना दायां हाथ उठाया। यद्यपि हट जाने के लिए उसे सावधान करती हुई कुछ घबराई आवाजें आईं, लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया और दूसरे ही क्षण भेड़ ने उस पर जोर से आक्रमण कर दिया।

चारों खाने चित्त पड़ा पंडित अब तत्क्षण भेड़ को सहज रूप से ऐसी भाषा में गालियाँ देने लगा जिसे सबने समझ लिया। जब तक वह उठ कर सचेत हुआ कि वह अपने औपचारिक व्यक्तित्व से भटक गया है, तब तक विलम्ब हो चुका था।

"हमें दुख है कि शरारती भेड़ को पता नहीं था कि आप के साथ शिष्ट आचरण कैसे करे। किन्तु हमें खुशी भी है कि आप अपनी जन्मभाषा पूरी तरह नहीं भूले।" एक हाजिर जवाब आदमी ने अपनी आँखें मटकाते हुए कहा।

एक महान सभ्यता की झाकियाँ :
युग-युग में सत्य के लिए इसकी गौरवमयी खोज

## १. एक समय की बात :
# सरस्वती तीरे

"क्या आपने यह खबर पढ़ी है, ग्रैंडपा?" देवनाथ की ओर दौड़ कर आते हुए उत्तेजित स्वर में संदीप ने पूछा। देवनाथ छड़ी लेकर घूमने के लिए नदी किनारे की ओर जा रहे थे। सूर्यास्त होने ही वाला था और मोह लेने वाली मन्द-मन्द हवा चल रही थी। उस छोटे-से शहर पर एक खुशनुमा शाम उतरने लगी थी।

देवनाथ रुक गये। उन्होंने सारी जिन्दगी इतिहास पढ़ाया था और भारत के अतीत पर बहुत खोज की थी। उनके पास बहुत-से योग्य छात्र थे लेकिन उनमें से कोई भी अपने विषय में संदीप के समान जिज्ञासु नहीं था। वह अभी स्कूल में ही पढ़ता था लेकिन आसमान तले की हर चीज जानने का उसे शौक था। और भला क्यों नहीं, उसके ग्रैंडपा इतने अद्‌भुत जो थे। एक प्रोफेसर, शिक्षाविद् और विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में सेवा-निवृत हो जाने के बाद देवनाथ के पास अपने पोते की ज्ञान-पिपासा शान्त करने के लिए काफी समय था। यदि उन्हें बालक के प्रश्न का उत्तर नहीं मालूम होता तो वे स्वयं सीखना चाहते। चुनिन्दे ग्रंथों से समृद्ध प्रोफेसर के पुस्तकालय की दोनों मिलकर छान-बीन करते। देवनाथ फ्रांसिसी चिंतक वॉलतेयर को बार-बार उद्धृत करते- "जितना अधिक मैं पढ़ता हूँ, उतना ही अधिक मनन करता हूँ। जितना ही अधिक मैं जानता हूँ, उतना ही मुझे यह लगता है कि मैं कुछ नहीं जानता।"

संदीप के मन में देवनाथ के प्रति गहरी श्रद्धा थी। उसे ग्रैंडपा के रूप में एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक मिल गया था।

"हाँ, मेरे बच्चे, मेरे लिए कौन-सा आश्चर्य लाये हो?" देवनाथ ने पूछा।

"ग्रैंडपा, हमलोगों के प्राचीन साहित्य में एक महान नदी सरस्वती का वर्णन आता है। लेकिन यह कहीं दिखाई नहीं देती। एक बार एक प्रसिद्ध बक्ता ने हमें यहाँ तक बताया कि ऐसी नदी का कभी कोई अस्तित्व था ही नहीं। लेकिन इस पत्रिका में एक रिपोर्ट छपी है कि लैंडस्टेट नामक उपग्रह ने उस नदी के मार्ग का फोटो लिया है। चौदह कि.मी. चौड़ी यह नदी हिमालय से बहती थी।"

"बिल्कुल ठीक मेरे बच्चे! इतना ही नहीं, कुछ और भी है। कुछ ही वर्षों पहले एक जाने-माने पुरातत्व वैज्ञानिक पॉल हेनरी फ्रैंक फर्त ने इस महान नदी पर पूरी तरह से शोध किया है। उसके विचार में यह नदी चार हजार वर्ष से भी पहले, शायद

# की गाथा

बहुत लम्बे समय तक सूखा पड़ने के कारण सूख गई; एक और नदी दृसद्वती का भी यही हाल हुआ।''

''क्या यह कुछ अजीब सा नहीं लगता जब कुछ लोग यह कहें कि इनका अस्तित्व कभी था ही नहीं।''

''अजीब सा नहीं। वास्तव में हमलोगों को भारत के अतीत के बारे में बहुत कम जानकारी है। सैकड़ों वर्षों तक हम तामसिक जीवन जीते रहे। हमलोगों ने खोज, गवेषणा या अनुसंधान में पहल नहीं की। परन्तु पश्चिम के अध्ययनशील विद्वानों ने हमारे लिए बहुत कुछ किया। उन्होंने साँची जैसे स्मारक और अजन्ता तथा एलोरा जैसे कला के खजानों को ढूंढ निकाला। उन्होंने हमारी बहुत प्राचीन महत्वपूर्ण पांडुलिपियों की खोज की और उनमें संकलित ज्ञान के बारे में हमें बताया। लेकिन साथ ही उन्होंने कुछ ऐसे सिद्धान्त प्रस्तुत किये जो असत्य निकले। उदाहरण के लिए, उन्होंने यह कहा कि आर्यों ने बहुत पहले भारत पर आक्रमण किया था और यहाँ के मूल निवासी द्रविड़ों से युद्ध किया था। हमारे अपने इतिहासकारों और अध्यापकों ने इसकी सत्यता की जाँच किये बिना उस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। हमारी इतिहाय की पुस्तकों में यह सिद्धान्त पढ़ाया गया। लेकिन आज कोई भी गंभीर विद्वान इस बात को देख सकता है कि इस सिद्धांत के समर्थन में प्रमाण का लेश मात्र भी नहीं। दूसरी ओर, इससे भारत को बहुत क्षति पहुँची। हमने अपने आप को दो भिन्न जातियों के रूप में देखा।'' ग्रैंडपा ने संदीप को समझाते हुए बताया।

''ग्रैंडपा, जब नदी सूख गई तो इसके तट पर रहनेवाले लोगों की क्या दशा हुई होगी?''

ये दोनों अब नदी के किनारे-किनारे टहलने लगे। देवनाथ का उत्साह बढ़ गया। उन्होंने कहा-

''उन्हें संकट का सामना करना पड़ा होगा। किन्तु यह संकट अचानक, एक दम नहीं आया होगा। नये चरागाह की तलाश में वे थोड़े-थोड़े, करके कहीं और चले गये होंगे। यह एक विशाल देश था और स्थान का अभाव नहीं था। लेकिन

सरस्वती नदी के किनारे जो संस्कृति और साहित्य उन्होंने विकसित किया, वे उनकी महानतम विभूति, हमारे देश के महानतम गौरव बन गये। वे वेद कहे जाते हैं।''

''क्या उन ग्रंथों को वे जहाँ-जहाँ गये, अपने साथ ले गये?''

देवनाथ मुस्कुराये और बोले,-''हाँ, वे वेदों को साथ लेकर जाते रहे- पर केवल अपनी स्मृति में। यद्यपि उन्हें लिखने की कला मालूम थी, फिर भी वे वेदों को कंठस्थ करने की विद्या का अभ्यास करते थे। और ध्यान रहे, चार-चार वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद।

''अविश्वसनीय''! सन्दीप ने विस्मय के साथ कहा।
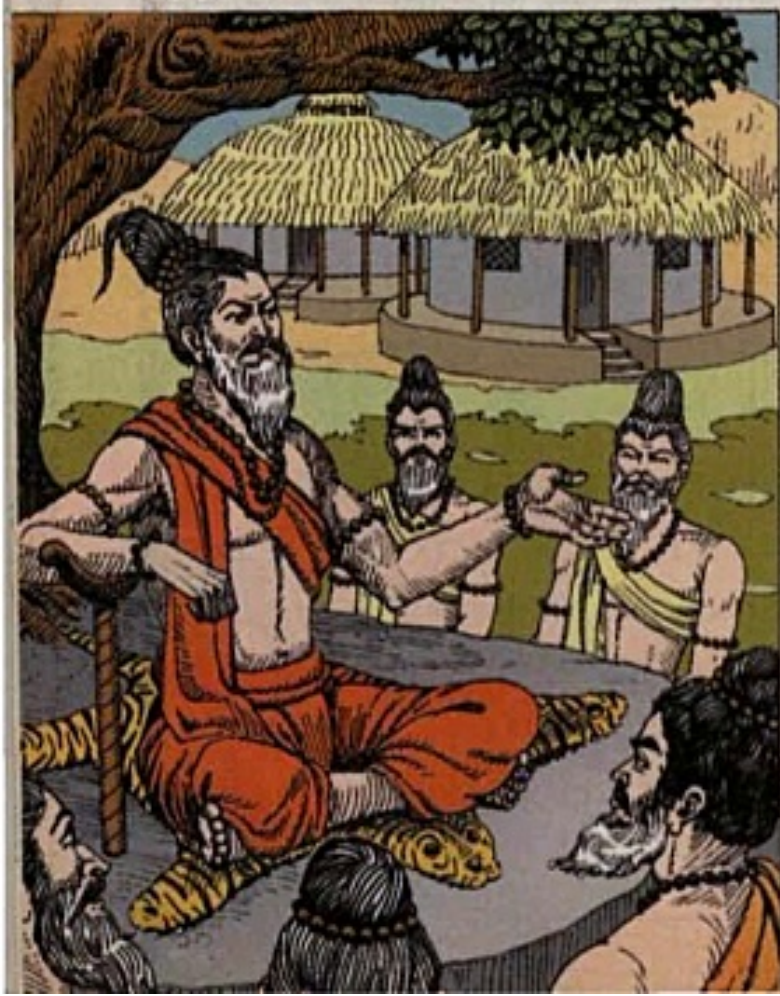
''अविश्वसनीय हम लोगों के लिए; लेकिन उनकी जीवन-शैली हमलोगों से बिल्कुल भिन्न थी। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि उस लुप्त सभ्यता का हर व्यक्ति वेदों को कंठाग्र कर सकता था। लेकिन जो ऐसा करते थे, वे ऋषि कहलाते थे यानी द्रष्टा और मुनि। वे समाज के शिक्षक थे। उन्हें धारणा यानी मन की एकाग्रता की शक्तियों की सिद्धि प्राप्त थी। वे वेद के स्तोत्रों का पाठ एक विशेष लय के साथ करते थे जिससे उन्हें न केवल शब्दों को याद रखने में बल्कि उनके शुद्ध उच्चारण और विराम में भी सहायता मिलती थी।''

''लेकिन वे इतना कष्ट क्यों करते थे, ग्रैंडपा?''

''मैं जानता था, तुम यह प्रश्न पूछोगे। संदीप! जब हम किसी चीज़ के लिए कष्ट उठाते हैं तो हम किसी आनन्द या लाभ के लिए ऐसा करते हैं। लेकिन ऋषियों ने न तो आनन्द के लिए और न लाभ के लिए ऐसा किया। वे जिज्ञासु थे, सत्य के अन्वेषक थे। वे जीवन की पहेलियों और आधारभूत समस्याओं का समाधान खोज रहे थे। हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? मृत्यु के पश्चात हमारा क्या होता है? हमें दुख क्यों होता है? आदि आदि। उनका विश्वास था कि वेदों में इन सभी प्रश्नों के उत्तर हैं।

''लेकिन वेदों को किसने लिखा?''

''यह एक रहस्य है। जैसे हम पुस्तकें, रिपोर्ट या पत्र लिखते हैं, उस अर्थ में उन्हें किसी ने नहीं लिखा। ऋषियों ने उन्हें सुना। इसीलिए इन्हें श्रुति

भी कहते हैं-यानी जो ज्ञान सुना गया हो। उनका विश्वास था कि चेतना के ऐसे उच्चतर लोक हैं जहाँ से प्रेरित शब्दों के रूप में मानव चेतना में सत्य उतर सकते हैं।

''काश! वे सत्य मुझमें भी उतर पाते!'' सन्दीप ने नक़ली गंभीरता के स्वर में कहा।

''वे भी हमारी तरह मनुष्य थे, संदीप! यदि उनके साथ ऐसा हो सकता था तो तुम्हारे साथ भी हो सकता है। नचिकेता तुम से बहुत छोटा था जब उसने मृत्यु के बाद के जीवन के रहस्य को ढूंढ निकाला।''

''नचिकेता! यह नाम परिचित-सा लगता है।''

''बस, इतना ही! क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि बहुत शताब्दियों से उसका नाम क्यों लिया जाता है?''

''शायद नहीं।''

''वेदों के बाद कई ग्रंथ आये जिन्हें उपनिषद् कहते हैं। एक ऐसी ही उपनिषद् में, जिसे कठोपनिषद् कहते हैं, नचिकेता का वर्णन है। उसके पिता मुनि वाजश्रवा यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ की पूर्णाहुति पर वे ब्राह्मणों को अपनी वस्तुएं दान दक्षिणा में दे रहे थे।

बालक नचिकेता ने यह सब ध्यान से देखा।

फिर, अपने पिता के पास आकर बोला,- ''आपने मुझे किसे दान में दिया?''

उसने इस प्रश्न को कई बार दुहराया जिससे उसके पिता नाराज हो गये और क्रोध से बोले,-

''यम को।''

नचिकेता चुपचाप यम के पास पहुँच गया, जो और कोई नहीं बल्कि मृत्यु के देवता हैं। परन्तु यम अपने निवास पर नहीं थे। नचिकेता तीन दिनों तक भूखा प्यासा उनके द्वार पर प्रतीक्षा करता रहा।

बालक की सचाई से प्रभावित होकर तीन दिनों तक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने के बदले यम ने उसे तीन वरदान दिये।

''मेरे पिता मेरी अनुपस्थिति में चिंतित होंगे। उन्हें शान्ति प्रदान कीजिये।'' नचिकेता ने पहला वरदान माँगा।

''तथास्तु।'' यम ने कहा।

''मुझे स्वर्ग का ज्ञान बताइए।'' नचिकेता ने दूसरा वरदान माँगा।

"तथास्तु।" यम ने कहा।

"मुझे मृत्यु का रहस्य बताइए। मनुष्य के देहान्त के पश्चात् आत्मा कहाँ जाती है? कृपया इसका ज्ञान दीजिए।" नचिकेता ने तीसरा वरदान माँगा।

यम को एक छोटे बालक से ऐसे प्रश्न की उम्मीद नहीं थी। "वत्स! मृत्यु और आत्मा का ज्ञान तुम्हारे लिए नहीं है। तुम कुछ ऐसी चीज मांगो जो तुम्हें प्रसन्नता दे सके—दीर्घ जीवन, समृद्धि और शक्ति।"

"हे करुणा निधान! इनमें से कुछ भी सच्चा सुख नहीं दे सकता। हमें वही ज्ञान दीजिए जिसके लिए मैंने प्रार्थना की है। केवल वही ज्ञान मुझे बचा सकता है।" नचिकेता ने आग्रह किया।

अन्त में, यम ने नचिकेता को आत्मा का ज्ञान प्रदान किया जो मृत्यु से परे है और जन्म-जन्म का शाश्वत यात्री है। नचिकेता प्रबुद्ध होकर घर लौटा और एक महान ऋषि के रूप में प्रख्यात हुआ।

"यम का निवास-स्थान मालूम करना क्या उनके लिए संभव था?" संदीप ने विनोद के स्वर में पूछा।

"मेरे बच्चे! ऐसी कहानियों को केवल उनके कथानक की रूप रेखाओं से नहीं समझना चाहिए। इनके पीछे सच्चा भाव छिपा रहता है। ऋषि वाजश्रवा मात्र क्रोध करनेवाला या बेटे को शाप देनेवाला नहीं था। यदि इतना ही होता तो उपनिषद में इस प्रसंग के लिए कोई स्थान न होता। मैं समझता हूँ कि उसने अपने बेटे को एक दायित्व सौंपा। उसने मृत्यु के रहस्य पर ध्यान करने का कार्य भार दिया। नचिकेता ने उस समस्या पर तीन दिनों तक चित्त एकाग्र किया होगा। इस अवधि के अन्त में उसे यह रहस्योद्घाटन हुआ होगा कि आत्मा अमर है।" देवनाथ ने कथा का विश्लेषण करते हुए समझाया।

"आश्चर्यजनक!" सन्दीप प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ा।

## कावेरी के तट पर – IV

# रेत में दबा शहर

**वर्णन : जयंती महालिंगम् ◆ चित्र : गौतम सेन**

सोमनाथपुर से 12 कि.मी. आगे कविनी या कपिला नाम की सहायक नदी दक्षिण से आ कर कावेरी में मिलती है. दोनों के संगम पर बसा हुआ है *तिरुमकूडलु नरसीपुर*, जो *टी. नरसीपुर* भी कहलाता है. 'तिरुम' का अर्थ है तीन और 'कूडलु' का अर्थ संगम. मान्यता है कि यहां भूगर्भ में *स्फटिक सरोवर* नाम की झील है और उसका पानी भी यहां कावेरी में मिलता है.

टी. नरसीपुर महत्वपूर्ण तीर्थस्थान है और यहां महर्षि अगस्त्य का मध्ययुगीन मंदिर है.

यहां से कुछ आगे कावेरी के बायें तट पर उजड़ा और रेत से ढका पुराना *तलकाडु* शहर है. कभी यह गंग राजवंश की समृद्ध राजधानी थी. बाद में चोलों के शासन में इसका नाम *राजराजपुरम्* हुआ. फिर यह होय्सल राजा विष्णुवर्धन के अधीन रहा. आज यहां चहुं ओर रेत के दूह हैं, जो अक्सर अपना स्थान बदलते रहते हैं. कोई-कोई दूह 15 मी. तक ऊंचा होता है.

एक रोचक कथा यहां पर प्रचलित है. उसमें इतिहास और कल्पना का घालमेल हुआ है और तलकाडु की इस दुर्दशा का कारण बताया गया है. श्रीरंगपट्टण में विजयनगर के सम्राट का अंतिम राज्यपाल तिरुमलराय था. उसकी साध्वी विधवा अलमेलम्मा के पास बहुत मूल्यवान गहने थे. मैसूर का राजा राज बोडेयर वे गहने हथियाना चाहता था और उसने अलमेलम्मा से गहने छीनने अपने सैनिक भेजे. अलमेलम्मा उनसे बचने के लिए भाग कर नदी के दूसरे तट पर मालंगि नामक स्थान पर पहुंची. जब पीछा करते हुए सैनिक वहां भी आ पहुंचे तो अलमेलम्मा गहनों समेत कावेरी में कूद पड़ी. उससे पहले उसने यह शाप दिया – "तलकाडु रेगिस्तान हो जाए, मालंगि भंवर बन जाए, और मैसूर के राजाओं के बच्चे न हों."

स्थानीय लोगों का कहना है कि अलमेलम्मा का यह शाप फला. तलकाडु रेत से ढक गया. मालंगि में नदी में गहरे

साध्वी अलमेलम्मा ने शाप दिया
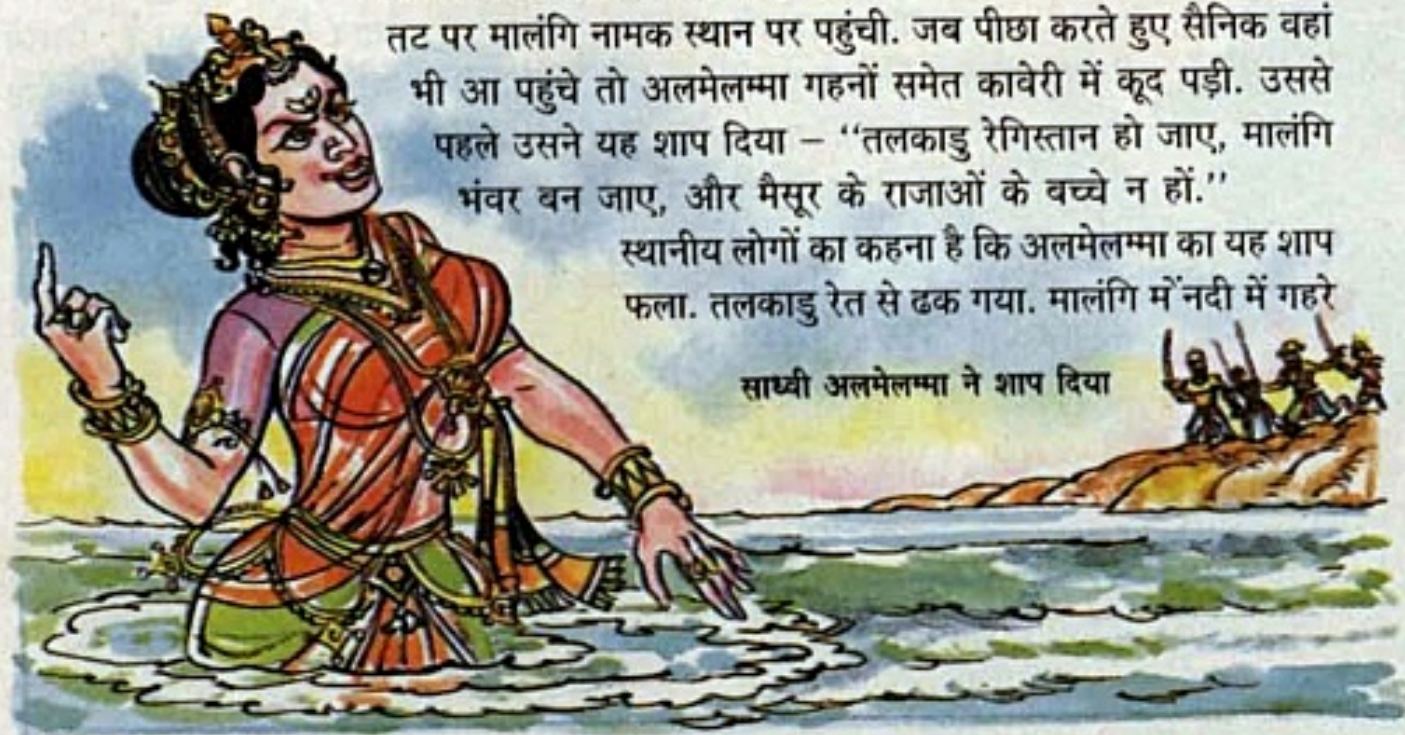
भंवर पड़ते हैं और मैसूर के राजवंश को बार-बार दत्तक लेने पड़ते हैं.

ऐसा विश्वास है कि तलकाडु में तीस मंदिर रेत में दबे पड़े हैं. सिर्फ चार मंदिर दबने से बच पाये हैं. वे हैं – गंग राजाओं के बनवाये पातालेश्वर और मरुलेश्वर मंदिर, होय्सलों का बनवाया कीर्तिनारायण मंदिर और चोलों का बनवाया वैद्येश्वर मंदिर. आज भी इन मंदिरों में नियमित रूप से पूजा होती है. हर बारह साल में एक बार नवंबर-दिसंबर में यहां होने वाले पंचलिंगदर्शन के मेले में हजारों यात्री यहां आते हैं और तलकाडु में रेत पर अस्थायी शहर बस जाता है.

वैद्येश्वर मंदिर, तलकाडु

पातालेश्वर और मरुलेश्वर के मंदिर सबसे प्राचीन हैं. पातालेश्वर के शिवलिंग के बारे में प्रसिद्ध है कि सुबह के समय वह लाल रंग का, दोपहर को काला और सांझ को सफेद दिखाई देता है.

कीर्तिनारायण मंदिर में तीन मीटर ऊंची विष्णु भगवान की मूर्ति है, जिसकी आज भी पूजा होती है.

तलकाडु का सबसे सजावट-युक्त मंदिर भगवान वैद्येश्वर का है, जिसमें स्वास्थ्यप्रदाता वैद्य के रूप में शिव की पूजा होती है. मंदिर 14 वीं सदी ई. में बना जान पड़ा है. लेकिन स्थानीय लोग इसे पुराणों से जोड़ते हैं. वे बताते है कि सोमदत्त नाम का ऋषि अपने शिष्यों के साथ यहां शिवजी को रिझाने के लिए तप कर रहा

बहेलियों ने हाथियों को सेमल की पूजा करते देखा
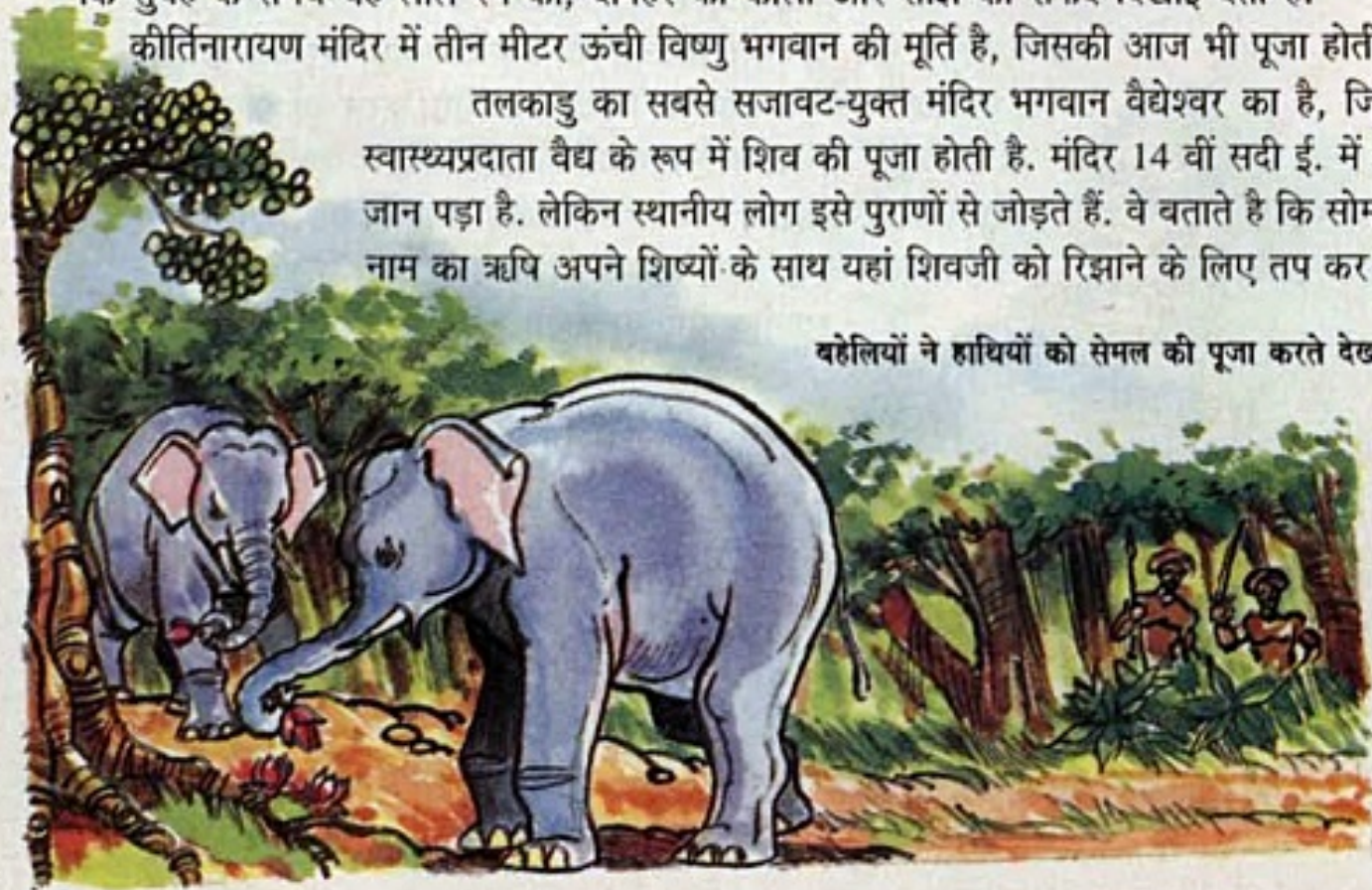
था. किंतु उसका तप पूरा होने से पहले जंगली हाथियों ने उन सबको मार डाला. वे सब उसी वन में हाथियों के रूप में जनमे. उनकी तपस्या में सहायता देने के लिए शिवजी वहां सेमल के एक पेड़ में शिवलिंग के रूप में आ छिपे. हाथी यह रहस्य जान कर प्रतिदिन सवेरे कावेरी में स्नान करके उस सेमल की जड़ों पर ताजे कमल के फूल चढ़ा जाते. तल और काडु नामक दो बहेलियों ने यह सब देखा और उन्होंने उत्सुकतावश उस पेड़ को काटने की कोशिश की. लेकिन गंड़ासे का पहला वार पेड़ पर पड़ना था कि उसके तने में से लहू बह निकला. दोनों बहेलिये घबरा गये. तभी आकाशवाणी हुई कि इसी पेड़ के पत्ते और फल कुचल कर तने के घाव पर बांध दो. जब तल और काडु ने वैसा किया तो घाव में से लहू के बजाय दूध रिसने लगा. हाथियों ने और बहेलियों ने वह दूध पिया और अमर हो गये. बाद में उस शिवलिंग के चारों ओर मंदिर रचा गया और वह स्थान *तलकाडु* कहलाया.

वन विभाग वन रोप कर तलकाडु के रेगिस्तान को फैलने से रोकने की कोशिश कर रहा है, परंतु रेत 3 मीटर सालाना की गति से आगे बढ़ रही है. इस रेत का स्रोत स्वयं कावेरी है. गरमियों में नदी के पाट में तथा तट पर जमा होनेवाली सारी गाद मिट्टी और रेत दक्षिण-पश्चिमी मानसून की हवाओं द्वारा उड़ा कर ध्वस्त तलकाडु शहर पर बिछा दी जाती है. यह भी संभव है कि कावेरी ने पिछली सदियों में कई बार अपना बहाव-मार्ग बदला हो और इस कारण यहां इतनी रेत जमा हुई हो. चाहे शाप अलमेलम्मा का रहा हो या स्वयं कावेरी का, तलकाडु आज एक उजाड़ और विस्मृत जगह है, जहां साधारण समय में बिरले ही कोई आता है.

तलकाडु से नदी उत्तर का रुख पकड़ती है और 25 कि.मी. आगे उसमें उसका दूसरा महत्वपूर्ण टापू शिवसमुद्रम् (या शिवन समुद्र) स्थित है. उत्तर से आ कर शिंशा नामक छोटी नदी यहां कावेरी से मिलती है. शिवसमुद्रम् टापू पर भगवान रंगनाथ (विष्णु) का मंदिर है. रंगनाथ यहां *मध्यरंग* कहलाते हैं. टापू 4.8 कि.मी. लंबा व 1.2 कि.मी. चौड़ा है और घने वनों से ढका है. तट से टापू पर पहुंचने के लिए

नरसीपुर का नदी-संगम

गगनचुक्की प्रपात

लुशिंग्टन पुल का उपयोग करना पड़ता है. पत्थर का बना यह 474 मी. लंबा मेहराबदार पुल 150 साल से ज्यादा पुराना है.

कावेरी शिवसमुद्रम् टापू को दोनों ओर से आलिंगन करती हुई बहती है और दोनों धाराएं लगभग 100 मीटर की ऊंचाई से कूदती हैं. पश्चिमी धारा 90 मी. की ऊंचाई से घाटी में गिरती है. यह प्रपात *गगनचक्की* कहलाता है. पूर्वी धारा का प्रपात 60 मी. ऊंचा है और उसका नाम *भरचुक्की* है. ये कावेरी प्रपात बड़े हरे-भरे रमणीक प्रदेश में हैं और पर्यटकों और पिकनिक मनाने वालों की भीड़ यहां सारे साल लगी रहती है.

शिवसमुद्रम् इसलिए भी प्रसिद्ध है कि देश का पहला पनबिजली कारखाना यहीं कायम हुआ और सन् 1902 से बिजली-उत्पादन कर रहा है. इसका निर्माण मुख्यतया कोलार की सोने की खानों को बिजली पहुंचाने के लिए किया गया था. यहां से कोलार की खानों तक बिजली की जो लाइन बिछायी गयी, वह उस समय दुनिया-भर में सबसे लंबी समझी जाती थी. बिजली केंद्र ऊंचे चट्टानी स्थान पर स्थापित है, वह 'ब्लफ़' कहलाता है. 'ब्लफ़' अंग्रेजी का शब्द है, जिसका अर्थ है – सीधा ऊंचा कगार. 135 मी. उंचा यह कगार जेनरेटर के टर्बाइन चलाने के लिए पानी के पाइप बिछाने के लिए आदर्श जगह है.

शिवसमुद्रम् के बिजली केंद्र का नामकरण सर के. शेषाद्रि अय्यर के नाम पर हुआ है. वे 1893 से 1901 तक मैसूर राज्य के दीवान थे और उन्हीं के कार्यकाल में ही इस बिजली केंद्र की योजना बनी और कार्यान्वित हुई. इसकी उत्पादन-क्षमता 42,000 कि.वा. है. दर्शक ट्राली के जरिये 435 मी. नीचे उतर कर बिजलीघर का कार्यकलाप देख सकते हैं.

गगनचुक्की प्रपात की भव्यता निहारने के लिए सबसे सुंदर स्थान है पीर हईब नामक मुसलमान संत की दरगाह. घनी हरियाली के बीच खड़ी यह चूना-पुती दरगाह पन्नों के बीच जड़े हीरे जैसी चमकती है. यहां से शिंशा का बिजली केंद्र भी नजर आता है. कावेरी की दोनों धाराएं सतेगाला नामक स्थान पर मिल कर पुनः एक हो जाती हैं.

# दामाद-बेटा

रामनगर के सीताराम परोपकार और अतिथि सत्कार के लिए इलाके भर में प्रसिद्ध थे। कोई भी अतिथि या याचक उनके यहाँ से निराश नहीं लौटता था।

एक दिन सुकाम नाम का एक युवा कवि और संगीतकार इन से मिलने आया। वह धन और प्रतिष्ठा के साथ एक महान कलाकार बनने का सपना लेकर शायरी और संगीत का शहर लखनऊ जा रहा था और इनसे आशीर्वाद माँगने आया था।

अतिथि सत्कार के बाद सीताराम ने स्वयं ही सुकाम से कहा, -''उस नगर में मेरे दो परिचित व्यक्ति हैं। एक का नाम मोहन है, जो मेरे एक मित्र परेधाम का दामाद है। वह नगर का एक सम्पन्न और सम्मानित व्यक्ति है। परोपकार उसका विशिष्ट गुण है। और वह स्वयं भी एक अच्छा कवि है। एक कवि को दूसरे कवि की सहायता करने में अवश्य खुशी होगी!

'' दूसरा है - विशाल, मेरा दूसरा पुत्र, जो उसी नगर में रहता है। शहर में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा है। दूसरों की सहायता करना उसे भी अच्छा लगता है। खासकर जरूरतमंद संगीतकारों की, क्योंकि वह स्वयं एक अच्छा गायक है। शील-स्वभाव में वह मोहन जैसा ही है। तुम उन दोनों से मिलो। तुम्हारा काम पूरा हो जायेगा।''

सीताराम के आश्वासन में एक दृढ़ विश्वास के साथ-साथ अपनापन का भाव था। सुकाम को उनकी बातों से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसे लगा जैसे उसका काम हो गया। उसने सीताराम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, - ''आप के आशीर्वाद से लखनऊ पहुँचने से पहले ही मेरा काम बन गया। मैं जाते ही आप का नाम लेकर उनसे मिलूँगा। आपकी मदद के बिना यह सब संभव नहीं हो पाता।''

इस पर सीता राम ने सुकाम को सावधान करते

हुए कहा,-"मेरा नाम लेकर उनसे नहीं मिलना, नहीं तो तुम्हारा काम नहीं बनेगा। वे तुम्हारी सहायता नहीं करेंगे। वे दोनों अपने को असाधारण व्यक्ति समझते हैं और इस बात का उन्हें गर्व भी है। वे नहीं चाहते कि उनका बड़प्पन किसी के कहने से प्रकट हो। बड़प्पन उनका स्वभाव है। परोपकार उनकी प्रकृति है। यदि बिना मेरा नाम लिये मिलोगे तो वे हर तरह से सहायता करेंगे।"

सुकाम लखनऊ पहुँचकर पहले मोहन के घर गया और कवि के रूप में अपना परिचय देते हुए बोला,-"महोदय, आप की कलाप्रियता, काव्यप्रतिभा तथा उदारता की प्रसिद्धि सुनकर आपके दर्शन के लिए आया हूँ। मैं भी कविता का एक अदना-सा उपासक हूँ और इस शायराना शहर में इस कला की सेवा करने का अवसर चाहता हूँ।"

मोहन को एक युवा कवि से मिल कर प्रसन्नता हुई। फिर भी वह कवि की प्रतिभा की परीक्षा लेना चाहता था। इसलिए उसने अपने ससुर परेधाम का जीवनवृत उसे सुनाकर कहा,"तुम इस विवरण को काव्य में प्रस्तुत करो, तब मैं तुम्हें सच्चा कवि मानूँगा।"

सुकाम ने परेधाम के जीवनवृत पर लय और छन्द से युक्त एक सुन्दर आशु कविता मोहन को सुना दी।

मोहन ने खुश होकर कहा,-"तुम वास्तव में एक प्रतिभावान कवि हो। मेरे मित्र कलाशेखर को तुम्हारे जैसे एक कवि की आवश्यकता है। मेरा पत्र देख कर उन्हें तुम्हारी परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

इतना कह कर मोहन ने सुकाम को कलाशेखर के नाम एक पत्र देकर विदा कर दिया। वहाँ से विदा लेकर सुकाम कवि और गायक के रूप में अपना परिचय देकर विशाल से मिला। विशाल भी कवि के व्यवहार कौशल और मधुर स्वभाव से बहुत प्रभावित हुआ। लेकिन उसकी प्रतिभा की जाँच करने के लिए उसने कवि से कहा,-"मेरे पिता पर मेरे बड़े भाई की लिखी एक कविता है। उसे किसी राग में गाकर सुनाओ तभी मैं तुम्हें सच्चा गायक मानूँगा।"

सुकाम ने विशाल की दी हुई कविता को बहुत मधुर राग में गाकर सुना दिया। विशाल ने भी
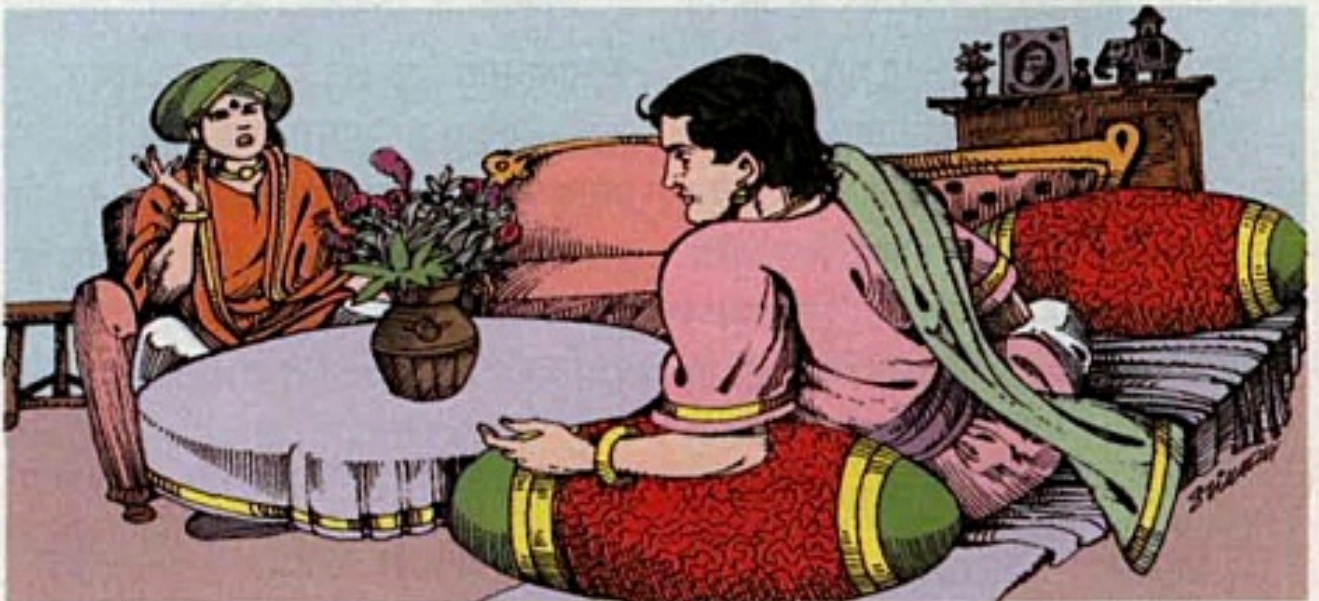
कलाशेखर के नाम सुकाम की अनुशंसा करते हुए एक पत्र दे दिया।

दोनों पत्रों के साथ सुकाम कलाशेखर से मिला। कलाशेखर न केवल कलाप्रेमी था बरन कला का पारखी भी था। कविता और संगीत का साधक होने के साथ-साथ उनका मर्मज्ञ भी था। इसके अतिरिक्त वह नगर का एक संभ्रांत और साधन-सम्पन्न व्यक्ति था। उसे एक ऐसे प्रतिभाशाली कवि और संगीतज्ञ की आवश्यकता थी जो न केवल उसे हृदय को छू लेनेवाली कविता और संगीत सुना सके बल्कि उसके गीतों और रागों की विवेचना भी कर सके।

उसने सुकाम के दोनों पत्र पढ़ने के बाद कहा,- ''आजकल सच्चे और प्रतिभावान कलाकारों का अभाव है। अधिकांश तो अर्थहीन और नीरस तुकबन्दी को ही कविता और अटपटे-बेसुरे गीतों को ही संगीत मान बैठते हैं। ऐसे तथाकथित कवियों और संगीतकारों से तंग आकर मैं अब किसी से बात नहीं करता जब तक वह मेरे विश्वास पात्र संगीत-प्रेमी मित्रों से पत्र लेकर नहीं आता। इन पत्रों से लगता है कि मेरे मित्र तुम्हारी प्रतिभा से प्रभावित हैं। लेकिन, फिर भी मैं तुम्हारी अपनी रचना किसी राग में तुमसे सुनना चाहूँगा।''

सुकाम ने इस सुअवसर का बड़ी कुशलता के साथ उपयोग किया और कविता और संगीत दोनों ही कलाओं में कलाशेखर का हृदय जीत लिया। कलाशेखर को सुकाम में अपने ही व्यक्तित्व की छवि नज़र आई। उसने उसे कवि और गायक के रूप में न केवल अपने घर में बल्कि एक मित्र के रूप में अपने हृदय में भी स्थान दे दिया।

सुकाम अपने जीवन और भाग्य पर सन्तुष्ट था। और अपने शुभ-चिंतकों और हितैषियों के प्रति कृतज्ञ भी। इसलिए उन सब की कृतज्ञता में और अपने लक्ष्य की पूर्ति के उपलक्ष्य में उसने

एक प्रीतिभोज देने का निश्चय किया।

सबसे पहले निमंत्रण देने के लिए वह मोहन के पास गया और बोला,-''महोदय, आप की सहायता से मैं अपने उद्देश्य में सफल हो गया हूँ। इसलिए आप के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए एक प्रीतिभोज का आयोजन कर रहा हूँ। कृपया, उसमें आप अपने परिवार और अन्य सम्बन्धियों और मित्रों के साथ अवश्य पधारें। मेरी कामना है कि उन सब के समक्ष मैं आप के प्रति अपना आभार प्रकट करूँ।''

मोहन को यह अच्छा नहीं लगा, क्योंकि लोगों की इस प्रकार सहायता करना उसके लिए सामान्य बात थी। उसने अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा,-''तुम्हारी योग्यता और प्रतिभा के कारण ही तुम्हें मदद की। इसमें सार्वजनिक रूप से लोगों के सामने आभार व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है। और न ही इसके लिए प्रीतिभोज देने की जरूरत है।''

लेकिन सुकाम क्षमायाचना करते हुए बहुत ही विनीत भाव से बोला,-''महोदय, मनुष्य ही समस्त सृष्टि में एक मात्र ऐसा प्राणी है जो अपने प्रति किये गये उपकार को भूल जाता है। आज मैं आप के उपकार से दबा हुआ हूँ। हो सकता है, कल अहं वश यह कहने लगूं कि यह सब मेरी योग्यता के कारण हुआ है। हो सकता है, किसी अप्रत्याशित परिस्थिति में आप का अनादर भी कर बैठूं। यदि सब के सामने आज अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं और कल आप के लिए कुछ अप्रिय वचन बोलूं तो निस्सन्देह लोग मुझे दुत्कारेंगे, कृतघ्न कहेंगे। उस स्थिति से बचने के लिए ही मैं सबके सामने आप के उपकार की घोषणा करना चाहता हूँ। यह भविष्य में हमारे अहं और अज्ञान जनित कृतघ्नता के विरुद्ध कवच का काम करेगी। इसलिए कृपया मेरे अनुरोध को ठुकराइए नहीं। यह मेरे प्रति आप का दूसरा उपकार होगा।''

मोहन सुकाम की बुद्धि और दूरदर्शिता की प्रशंसा करता हुआ बोला,-''मैं तुम्हें अपने ससुर परेधाम और साला गणपति का पता देता हूँ। तुम उनसे स्वयं मिलकर निमंत्रण दे दो तो अच्छा रहेगा।'' दो और व्यक्तियों के लिए सुकाम के आग्रह करने पर मोहन ने अपने पिता सीताराम और भाई विशाल का नाम और पता जोड दिया।

सुकाम को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मोहन और विशाल दोनों भाई हैं और दोनों ही सीताराम के पुत्र हैं, जब कि सीताराम ने केवल विशाल को ही अपना बेटा बताया था।

इसी प्रकार सुकाम विशाल से भी मिला और

उसे भी प्रीतिभोज में आने के लिए निमंत्रित किया। जिस प्रकार उसने मोहन से आग्रह करके समस्त परिवार और सम्बन्धियों के साथ आने का अनुरोध किया था, वैसे ही विशाल से भी कहा। विशाल ने पहले अपने पिता और भाई का नाम बताया। लेकिन सुकाम के पुनः आग्रह करने पर ससुर परेधाम और साले गणपति का भी नाम दे दिया।

सुकाम आश्चर्य से सोचने लगा कि न केवल मोहन और विशाल दोनों सीताराम के पुत्र हैं, बरन, दोनो ही परेधाम के दामाद भी हैं। लेकिन सीताराम की बात से ऐसा कुछ नहीं लगा था। हो न हो, सीताराम की बात में कुछ रहस्य अवश्य है। उन्होंने अपने बेटों से भी अपना नाम बताये बिना ही मुझे मिलने के लिए कहा। और सचमुच उनका नाम लिए बिना ही मेरा काम हो गया।

सुकाम को निमंत्रण देने के लिए सीताराम के पास तो जाना ही था। इसलिए सीताराम से ही उनकी बात का रहस्य जानने के लिए वह उनसे मिलने रामपुर की ओर चल पड़ा।

सीताराम से मिलते ही उसने साष्टांग प्रणाम किया और बड़े ही विनम्र भाव से कहा,- ''महानुभाव! जैसा आप के विषय में सुना था, उससे भी विलक्षण आप का व्यक्तित्व देख कर मैं नत मस्तक हूँ। आप की परोपकार-भावना और निस्वार्थ मानव-सेवा जैसे दुर्लभ गुणों पर मुग्ध तो था ही, आपकी रहस्यमयी बुद्धि और गहरे ज्ञान पर चकित भी हूँ।

''आप के मार्ग दर्शन के अनुसार आपके मित्र परेधाम के दामाद मोहन और आप के दूसरे पुत्र विशाल से मिला और दोनों को एक से बढ़ कर

एक अनमोल रत्न पाया। आप के विश्वास के अनुसार उन दोनों ने मेरी समस्या का समाधान कर दिया। शील-स्वभाव, आतिथ्य, मानव-प्रेम और निस्वार्थ परोपकार की भावना में वे आप के ही प्रतिरूप हैं। उनकी सहायता से और आप के आशीर्वाद से अब मैं अपने जीवन के लक्ष्य तक पहुँच गया हूँ और नगर के एक बहुत बड़े कला-मर्मज्ञ कला शेखर की छाया में साहित्य और संगीत की सेवा करने का मुझे अवसर मिल गया है। इस उपलक्ष्य में मैं आप को एक प्रीतिभोज में निमंत्रित करने आया हूँ, जिसमें आप सब का आभार व्यक्त कर सकूं। साथ ही यह गूढ़ ज्ञान भी सीखने आया हूँ कि आपने दोनों बेटों में से एक को परेधाम का दामाद और दूसरे को अपना बेटा क्यों बताया जबकि दोनों आप के पुत्र हैं और दोनों ही परेधाम के दामाद भी हैं।

सीताराम ने मुस्कुराते हुए कहा,-''यद्यपि मेरे दोनों पुत्र समान रूप से समर्थ, सम्पन्न, सम्माननीय और परोपकार, आतिथ्य सेवा में मेरे ही आदर्श और वंश-परम्परा के अनुगामी हैं, लेकिन मोहन का स्वाभाविक झुकाव अपने ससुर की ओर अधिक है और विशाल का मेरी ओर अधिक। मोहन के घर में ससुराल के परिवार को प्रथम महत्व प्राप्त है और विशाल के घर में प्रथम महत्व पिता को प्राप्त है। जिस प्रकार बुद्ध के अनुयायी बौद्ध, शिव के अनुयायी शैव, भगवान को माननेवाले भक्त और गुरु को माननेवाले शिष्य कहलाते हैं, उसी प्रकार ससुर को प्रथम महत्व देनेवाले दामाद और पिता को पहले आदर देनेवाले पुत्र ही तो कहलायेंगे। व्यक्तियों के नाम और पद उनके आचरण और व्यवहार-शैली के प्रतिबिम्ब, व्याख्या और स्पष्टीकरण होते हैं, यह नहीं भूलना चाहिए।

''तुम भी यदि कवियों और कलाकारों के बृहत संसार से विमुख होकर केवल कलाशेखर के व्यक्तिगत जीवन और उसके आश्रय के घेरे में बन्द हो गये तो उसके सेवक मात्र बन कर रह जाओगे, महाकवि या महान गायक या कलाकार नहीं बन पाओगे।''

सीताराम की गूढ़ बातें सुकाम के हृदय को छू गईं। सीताराम के मार्ग-दर्शन से न केवल उसे जीवन का लक्ष्य मिला, बरन उस लक्ष्य को साधने का मंत्र भी मिल गया। उसके ज्ञान के प्रकाश में यह भी पता चल गया कि मोहन ने पहले अपने ससुर परेधाम और साले गणपति का ही नाम क्यों दिया था, जब कि उसे पहले अपने पिता का नाम देना चाहिए था। सचमुच, पहले वह परेधाम का दामाद है, बाद में सीताराम का बेटा। विशाल ने, उसी प्रकार, पहले पिता का नाम दिया था, ससुर परेधाम का बाद में। इसलिए वह पहले सीताराम का बेटा है, बाद में दामाद।

दामाद और बेटा का रहस्य समझ लेने के बाद हर बात में ज्ञान की बात करनेवाले सीताराम से प्रीतिभोज में अवश्य आने का आग्रह करके सुकाम ने उनसे विदा ली।

# महाभारत

हस्तिनापुर में श्रीकृष्ण-आगमन का समाचार जंगल में आग की तरह फैल गया। धृतराष्ट्र को यह खबर जैसे ही मिली, उन्होंने भीष्म, द्रोण, संजय, विदुर तथा दुर्योधन को बुला भेजा। उनके आ जाने पर निर्देश देते हुए उन्होंने कहा,-

"आज हस्तिनापुर में कृष्ण आ रहा है, इसलिए उसके स्वागत में यहाँ के सभी मार्गों और वीथियों को तोरण और बन्दनवार से सजा दो। स्थान-स्थान पर आवश्यक सुविधाओं का प्रबन्ध कर दो। ध्यान रखो, उसके स्वागत-सत्कार में कोई त्रुटि न रहे।"

महाराज धृतराष्ट्र के आदेशानुसार दुर्योधन ने हस्तिनापुर के सभी मार्गों के अतिरिक्त वृकस्थल तक जाने वाले पथ को भी अलंकृत द्वारों और पताकाओं से सजा दिया।

श्रीकृष्ण इन सजावटों की ओर बिना ध्यान दिये हस्तिनापुर पहुँच गये। दुर्योधन को छोड़ कर धृतराष्ट्र के अन्य सभी पुत्र भीष्म और द्रोण के साथ अपने-अपने रथ पर उनके स्वागत के लिए आये।

श्रीकृष्णने धृतराष्ट्र के महल के सामने अपना रथ रोक दिया और पैदल ही उनकी राजसभा में पहुँचे। इनके पहुँचते ही धृतराष्ट्र सहित सभी राजे तथा अधिकारी इनके सम्मान में खड़े हो गये।

श्रीकृष्ण ने सबसे पहले भीष्म और धृतराष्ट्र से उनका कुशल-क्षेम पूछा। बाद में अन्य सभी राजाओं और उपस्थित व्यक्तियों से उनकी उम्र के अनुसार बातचीत की।

धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण को स्वर्ण आसन पर बिठाया। श्रीकृष्ण ने उनका आतिथ्य स्वीकार

किया और कुछ देर उनसे बातें कर, विदुर के घर चले गये।

उसी दिन अपराह्न वे कुन्ती से भी मिलने गये। उन्होंने श्रीकृष्ण को गले से लगा लिया और अपने पुत्रों का कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा,- ''कृष्ण! मेरे पुत्र मुझे यहाँ अकेली छोड़ कर बन चले गये। जिन पितृहीन बच्चों को मैंने इतने प्यार से पाला था, भयंकर बन में उन्होंने अपना जीवन कैसे बिताया होगा। धर्मराज, भीम, अर्जुन सकुशल तो हैं? नकुल, सहदेव और कोमलांगी द्रौपदी कैसी हैं? मैं उन्हें कब देख पाऊंगी? तुम्हारे होते हुए भी धर्म परायण आत्माओं की यह दुर्दशा!'' यह कहते-कहते कुन्ती की आँखों में आँसू आ गये।

श्रीकृष्ण ने कुंती को सान्त्वना दी और कहा कि शीघ्र ही तुम्हारे सभी पुत्र, पुत्रवधू और अपने राज्याधिकार के साथ तुमसे मिलेंगे। थोड़ा और धैर्य रखो।

कुन्ती से विदा लेकर वे दुर्योधन से मिलने चले गये। दुर्योधन का महल इन्द्रपुरी के समान भव्य था। वह एक विशाल अलंकृत कक्ष में रत्नजटित सिंहासन पर गर्व के साथ बैठा हुआ था। दुःशासन, कर्ण और शकुनि भी उसके समीप बैठे थे। श्रीकृष्ण के आते ही सब के सब उठ खड़े हुए। दुर्योधन ने उन्हें उनके लिए विशेष रूप से सुसज्जित एक आसन पर बैठाया। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन तथा वहाँ उपस्थित सभी से कुशल-मंगल पूछा। दुर्योधन ने उस रात अपने ही महल में भोजन और विश्राम कर आतिथ्य स्वीकार करने की उनसे प्रार्थना की। लेकिन श्रीकृष्ण ने अपनी विवशता बताकर उसकी प्रार्थना ठुकरा दी।

इस पर दुर्योधन ने पुनः अनुरोध करते हुए कहा,-''कृष्ण, तुमने तो निष्पक्ष रह कर कौरवों और पांडवों दोनों की सहायता की। इसलिए मैं हृदय से अपना आतिथ्य स्वीकार करने के लिए तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ। फिर क्या कारण है कि तुम इसे ठुकरा रहे हो?''

''मैं यहाँ दूत बन कर आया हूँ। और जब तक मेरा उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक तुम्हारा आतिथ्य नहीं स्वीकार कर सकता।'' श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया।

''तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो या न हो, उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति में

मेरा कोई योगदान होगा, ऐसी धारणा मत बना लेना। तुम हस्तिनापुर आये हो तो इसलिए, तुम्हें आतिथ्य-सत्कार और सम्मान देना हमारा कर्तव्य है। तुम्हें हमारा अनुरोध स्वीकार करना ही चाहिए।'' दुर्योधन ने औपचारिक भाव से कहा।

दुर्योधन के मनोभाव को ताड़ कर श्रीकृष्ण मुस्कुराये और बोले,-''दो तरह के व्यक्तियों के साथ भोजन करने का आनन्द है। प्रेम करने वालों के साथ और विपत्ति में फँसे लोगों के साथ। हमारे प्रति तुम्हारे हृदय में प्रेम नहीं है। अपने ही परिवार के पांडवों के प्रति तुममें जरा भी प्यार नहीं है। तुम उनसे अकारण द्वेष करते हो और अपना शत्रु मानते हो। उनके धर्मानुसार आचरण पर किसी ने उंगली नहीं उठाई। इसीलिए वे हमें प्रिय हैं। उनसे शत्रुता का अर्थ है मुझसे शत्रुता। सच तो यह है कि आतिथ्य के लिए मुझ से तुम्हारा अनुरोध ही अनुचित है।''

इतना कह कर श्रीकृष्ण वहाँ से उठकर विदुर के घर चल पड़े और वहीं भोजन किया।

भोजन के उपरान्त विदुर ने श्रीकृष्ण से कहा,-''कृष्ण! लगता है, यहाँ आकर तुमने ठीक नहीं किया। दुर्योधन का मन सभी कर्तव्यों और मूल्यों को अलग रख कर सिर्फ युद्ध पर टिका हुआ है। कर्ण का दंभ है कि वह अकेला ही सभी पांडवों को परास्त करने के लिए काफी है। इसलिए वह शांति का विरोधी है। कर्ण के बल पर दुर्योधन भी युद्ध के लिए मचल रहा है। इसके अतिरिक्त उसकी सेना की शक्ति भी बहुत अधिक है। उसके पक्ष के राजे

तुम्हारे पुराने शत्रु हैं। इसलिए वे सभी तुम्हारी हर बात का विरोध करेंगे, चाहे तुम कुछ उनके भले के लिए ही क्यों न कहो। यद्यपि तुम्हारी शक्ति पर मुझे पूरा विश्वास है, फिर भी मैं चाहता हूँ कि तुम उनके समझ जाओ ही नहीं।''

विदुर से सहमत होते हुए श्रीकृष्ण ने कहा,-''मित्र के स्नेह के नाते तुमने ठीक ही परामर्श दियाहै। तुमने जो कहा है, वही होगा भी। फिर भी, यह मेरा धर्म है कि शांति के लिए और उभय पक्षों को विनाश से बचाने के लिए मैं भरसक प्रयास करूँ। हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना उचित नहीं होगा। यदि ऐसा नहीं किया तो संसार मुझ पर यह दोषारोपण करेगा कि मैंने ही दोनों पक्षों को सर्वनाश की ज्वाला में झोंक दिया। जहाँ तक उनके सामने जाने से मुझ पर संकट आने का प्रश्न है, उसकी तुम चिंता मत करो।''

उस रात श्रीकृष्ण ने विदुर के घर पर ही विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल दैनिक दिनचर्या से निवृत हो जैसे ही श्रीकृष्ण रथ की ओर बढ़े कि धृतराष्ट्र की ओर से दुर्योधन और शकुनि उन्हें राजसभा में ले जाने के लिए आ गये। उनके साथ अनेक राजा भी हाथियों व घोड़ों पर सवार होकर आये थे। उन सब के बीच राजमार्ग पर जाते हुए अपने रथ पर सवार श्रीकृष्ण ऐसे शोभित हो रहे थे मानो सितारों के बीच पूर्व क्षितिज-पट पर चन्द्रमा उदित हो रहा हो। इस मनोहर दृश्य को देखने के लिए स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी मार्गों व घर के परकोटों पर उमड़ पड़े।

धृतराष्ट्र की राजसभा के मुख्य द्वार पर श्रीकृष्ण के संकेत पर सारथि दारुक ने रथ रोक दिया। सात्यिकी और विदुर के साथ श्रीकृष्ण ने सभा में प्रवेश किया। समस्त सभासदों ने खड़े होकर श्रीकृष्ण का स्वागत किया और सम्मान के साथ विशिष्ट आसन पर बैठाया। विदुर और सात्यिकी ने इनके समीप ही अपना आसन ग्रहण किया।

सभा में थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। सब की दृष्टि श्रीकृष्ण पर टिकी थी। श्रीकृष्ण ने बारी-बारी से सबके ऊपर दृष्टि डाली। धृतराष्ट्र पर नज़र पड़ते ही उन्हें सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा,- ''यद्यपि कौरवों और पांडवों दोनों की ओर से युद्ध की तैयारियाँ हो चुकी हैं, फिर भी राजन! मैं पांडवों की ओर से आप के पास शांति का सन्देश लाया हूँ। पांडव यद्यपि शान्ति के पक्ष में नहीं हैं, फिर भी
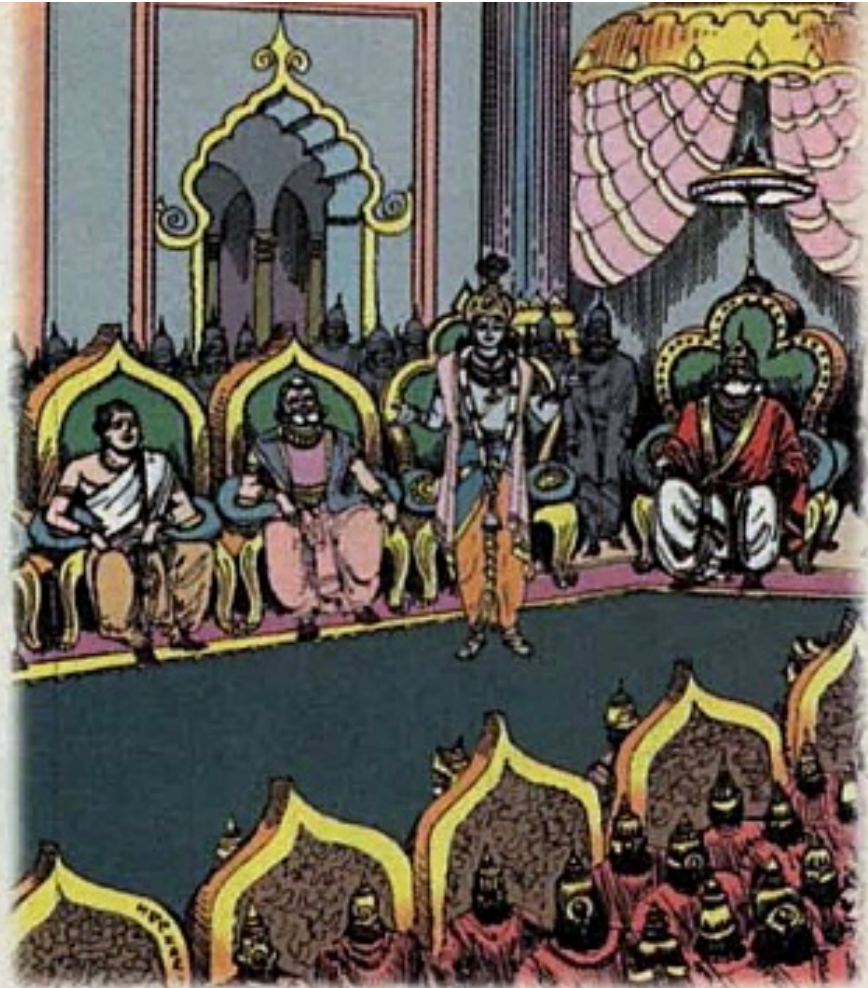
युद्ध की भीषण विभीषिकाओं को देखते हुए, मैं उन्हें शान्ति के लिए मना लूंगा।

''भारत के सभी राजवंशों में कुरु वंश सर्वश्रेष्ठ है और आप उस वंश के शीर्ष हैं। यदि युद्ध हुआ तो कुरुवंश के विनाश के साथ-साथ सभी राजवंशों का विनाश हो जायेगा और इसका कलंक आप पर लगेगा। यदि आप के वंश का कोई व्यक्ति अधर्म करे, नीति विरुद्ध कार्य करे तो उसे दण्ड देना आप का अधिकार और धर्म है।

''आप के पुत्रों ने धर्म की सारी मर्यादाओं को तोड़ दिया। पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित का विवेक खो दिया। पाण्डवों पर अमानवीय अत्याचार किये। वे समर्थ होते हुए भी मेरे कहने पर यह सब सहते रहे। यह सब आप जानते हैं। यदि युद्ध का विनाशकारी संकट आया

तो इसका दायित्व कौरवों पर होगा। लेकिन आप चाहें तो कुरु वंश को बचा सकते हैं। आप चाहें तो कौरवों और पांडवों के बीच शान्ति की स्थापना कर सकते हैं। आप अपने पुत्रों को अनुचित और धर्म विरुद्ध कार्य करने से रोक सकते हैं। उन्हें सन्मार्ग पर चलने का आदेश दे सकते हैं। यह सब करने का अधिकार आप को है। आप उन्हें अपने न्यायपूर्ण आदेश का पालन करने पर बाध्य कर सकते हैं, आप उनके पिता और सम्राट हैं।

"पांडवों को युद्ध में कोई भी नहीं जीत सकता। वे अजेय हैं। यदि युद्ध नहीं हुआ और आपने पांडवों के साथ सन्धि कर ली तो इससे आप का ही हित साधित होगा। जब तक पांडव आप के साथ रहेंगे, तब तक आप इस पृथ्वी पर निष्कंटक राज्य करेंगे, क्योंकि उन्हें परास्त करने वाली कोई शक्ति अभी तक धरती पर नहीं उतरी। और यदि युद्ध हुआ तो आप को कोई लाभ नहीं होगा, चाहे कोई भी जीते। इस युद्ध में संसार के सभी राजा भाग लेंगे और युद्ध की ज्वाला में कीटों की तरह मर मिट जायेंगे। संसार वीरों से खाली हो जायेगा। आप चाहें तो संसार को इस विनाश से बचा सकते हैं।

"आप अपने पुत्रों को सन्मार्ग पर लाइए। मैं पांडवों की क्रोधाग्नि को शान्त करूँगा। इस प्रकार शान्ति संभव है।

"फिर, पितृहीन पांडवों का आप के सिवा कौन अपना है! संकट के समय वे किसके पास जायें? वे भी आप के ही संतान हैं। वैसे भी उन्होंने आप का और आप के पुत्रों का क्या बिगाड़ा है? आप जानते ही हैं कि धर्मराज कैसा सरल हृदय है। लाख के महल में जलाया गया तब भी वह आप के पास आया। आपने उसे इन्द्रप्रस्थ भेज दिया तो वह चुपचाप चला गया। शकुनि ने उसे धोखे से छला फिर भी उसने अपने बचन का पालन किया।

"और अन्त में पूरी सभा से कौरवों और पांडवों के हित को ध्यान में रख कर याचना करता हूँ कि पांडवों के पिता का आधा राज्य न्याय और धर्मपूर्वक उन्हें लौटा दें और कुरु वंश के साथ-साथ सभी राजवंशों को सर्वनाश से बचा लें। और यहाँ उपस्थित सभी राजा एक साथ बैठकर प्रेम के साथ भोजन करें और पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और शत्रुता त्याग कर अपने-अपने राज्य लौट जायें।

"लेकिन यदि सभा ने अधर्म और अन्यायपूर्ण

निर्णय लिया तो तज्जनित पाप के भागी वे सभी होंगे जो ऐसे निर्णय के साक्षी होंगे।

"मैं हर प्रकार से सोच-विचार कर ही ये बातें सम्राट और उनकी सभा को बता रहा हूँ। आगे सोच-विचार कर निर्णय लेना आप के हाथ में है।"

श्रीकृष्ण इतना कह कर मौन हो गये। पूरी सभा में बहुत देर तक सन्नाटा छाया रहा।

कुछ देर के बाद परशुराम ने धृतराष्ट्र को सम्बोधित करके प्राचीन काल के अहंकारी राजा दम्बोद्भव का प्रसंग सुनायाः

दम्बोद्भव प्रतिदिन अपनी प्रजा से अपनी वीरता की डींग हाँकता और पूछता- 'मुझसे श्रेष्ठ योद्धा इस पृथ्वी पर कौन है?'

ऋषि-मुनि उसे समझाते कि इतना अति आत्म-विश्वास घातक होता है। लेकिन उसे ज्ञान नहीं हुआ। अन्त में ऋषियों ने बता दिया कि गन्धमादन पर्वत पर रहनेवाले दो तपस्वी बड़े भारी योद्धा हैं।

दम्बोद्भव अपनी सारी सेना लेकर गन्दमादन पर्वत पर पहुँच गया। दोनों तपस्वियों ने उसका स्वागत किया और आतिथ्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। पर दम्बोद्भव ने दंभ के साथ उतर दिया-'युद्ध ही हमारे लिए आतिथ्य है।' तपस्वियों ने फिर उसे समझाया कि यह प्रदेश तपोभूमि है और युद्ध के लिए उपयुक्त नहीं है। दम्बोद्भव तब भी उन्हें युद्ध के लिए ललकारता रहा।

तब एक तपस्वी ने कुश का एक तिनका दम्बोद्भव की सेना पर फेंक दिया। उसकी सेना सो गयी और दम्बोद्भव शिथिल हो गया। उसका दम्भ जाता रहा और वह तपस्वी के चरणों में गिर कर माफी मांगने लगा।

'अपने प्रलापों को त्याग कर प्रजा के कल्याण के लिए कार्य करो, तभी उत्तम राजा बन सकते हो।' इतना कह कर तपस्वी ने आँखें बन्द कर लीं और फिर तपस्या में लीन हो गये।

वे दोनों तपस्वी नर और नारायण थे। जिसने कुश का तिनका सेना पर फेंका था, वे नर थे और दूसरे नारायण थे। वे ही नर-नारायण अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं। अर्जुन गांडीव उठाये, उसके पहले ही अपना दंभ छोड़ कर उसकी शरण में चले जाओ। इसी में तुम्हारा और तुम्हारे वंश का कल्याण है। इतना कह कर परशुराम चुप हो गये।

# सच्ची सुन्दरता की खोज

एक स्त्री रानी की सेविका थी। रानी उस पर बहुत विश्वास करती थी।

रानी का कमरा साफ करते समय कभी-कभी उस स्त्री को रानी के आभूषणों से टूट कर गिरे मोती या सोने के मनके मिल जाते। वह स्त्री उन्हें उठा कर ईमानदारी से रानी को लौटा देती।

रानी ने प्रसन्न होकर उनमें से कुछ बहुमूल्य मनकों को उसे अपने पास ही रख लेने के लिए कहा।

स्त्री का छोटा बेटा दूर के एक गाँव में अपने मामा के पास रहता था। ऐसा इसलिए कि मामा अध्यापक थे और कई अन्य बालक शिक्षा पाने के लिए उसके साथ रहते थे।

एक दिन, वह बालक अपने घर आया। रात में उसने अपनी माँ द्वारा एकत्र किये गये मोतियों और सोने के दानों को देखा। उन चमचमाते दानों को छू कर देखते हुए उसने कहा, "अहा! ये कितने सुन्दर हैं।"

"ये निस्सन्देह सुन्दर हैं, किन्तु, मेरे बच्चे, यदि तुम इनसे और इनसे भी मूल्यवान आभूषणों से अलंकृत रानी को देखो, तब तुम्हें पता चलेगा कि सच्ची सुन्दरता क्या होती है। जितनी भी सुन्दर चीजें मैंने देखी हैं उनमें वह सबसे सुन्दर है।" बालक की माँ ने अपना विचार व्यक्त किया।

बालक शान्त हो गया; ऐसा लगा मानो वह किसी विचार में खो गया हो। दूसरे दिन प्रातः काल वह कहीं गायब हो गया। चिंतित माता-पिता ने उसे बहुत ढूंढा। पड़ोसियों ने भी उसकी खोजबीन में मदद की। लेकिन उसका कहीं पता न चला।

वर्षों बाद उसकी माँ को अपने खोये हुए पुत्र से एक सन्देश मिला: "मां, मैंने अपने मामा से सुना था कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे, गगन ये सब भगवान के अलंकार हैं। आप के इस कथन से, कि आभूषणों से भी अधिक सुन्दर इन्हें धारण करनेवाली रानी थी, मुझे यह प्रेरणा मिली कि जब सूर्य, चन्द्रमा, तारे और गगन इतने सुन्दर हैं तो इनसे अलंकृत भगवान कितने भव्य होंगे। मैं उन्हें खोजने चला गया। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि मैंने उन्हें पा लिया है। वे इतने भव्य हैं कि शब्द उनके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन नहीं कर सकते।"

माँ रो पड़ी। लेकिन उसे प्रसन्नता भी हुई कि उसके पुत्र ने ऐसी वस्तु प्राप्त कर ली है जिसे बिरले ही पाते हैं।

# पिता के लिए

एक बार गान्धार देश का राजा धन्वन्त अपने परिजनों के साथ आखेट के लिए गया। शिकार के लिए वन में भटकते-भटकते वह काफी थक गया, लेकिन कोई शिकार न मिला। उसके परिजन पीछे छूट गये थे, इसलिए उनकी प्रतीक्षा और थोड़ा विश्राम के लिए तब वह एक वृक्ष की छाया में बैठ गया। उस वृक्ष के फूलों से मादक गंध आ रही थी। तभी उसकी दृष्टि एक अलौकिक सुन्दरी पर पड़ी। उसे आश्चर्य हुआ कि इस निर्जन वन में स्वर्ग की अप्सरा-सी स्त्री कहाँ से आई।

उसकी असाधारण सुन्दरता पर राजा मुग्ध हो गया। उसने उसके निकट जाकर पूछा,-''हे अलौकिक सौन्दर्य की स्वामिनी! तुम कौन हो और इस निर्जन वन में अकेली किसलिए आई हो। क्या मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकता हूँ?''

''मैं एक गंधर्व बाला हूँ। जब मैं इस वृक्ष के ऊपर आकाश-मार्ग से जा रही थी तो इसके पुष्पों के सौन्दर्य और सुगन्ध ने मुझे आकृष्ट कर लिया और इसका आनन्द लेने के लिए मैं इसके नीचे उतर आई।'' सुन्दरी ने अनमने भाव से उत्तर दिया और... रंग-बिरंगे फूलों से झुकी हुई डालियों को छूती, प्यार करती हुई घूमने लगी।

राजा उसके पीछे-पीछे जाते हुए बोला,-''मैं इस देश का राजा हूँ और तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। मैं तुम्हें अपना सर्वस्व सौंप दूँगा और स्वर्ग के समान ही सुख-सुविधाओं के बीच रखूँगा। मेरी रानी बन कर पृथ्वी पर ही निवास करो और गंधर्व लोक में लौटने की बात न सोचो।''

गन्धर्व बाला को राजा का मोहजनित आग्रह अच्छा न लगा। पृथ्वी के प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेने में राजा के व्यव धान से खिन्न होकर उसने उसका मनुहार ठुकरा दिया। राजा, फिर भी, मानों उसके मोह में अन्धा होकर उसके प्रणय की भीख माँगने लगा।

सुन्दरी ने दुखी होकर अन्त में उसे शाप देते हुए कहा,-''राजा! जिस दृष्टि के कारण तुम ऐसा आचरण कर रहे हो, उस दृष्टिसे तुम वंचित हो जाओगे।'' और इतना कह कर वह आकाश में उड़ गई।

उसके जाते ही राजा की आँखों की ज्योति जाती रही। वह पश्चाताप करता हुआ बच्चों के समान रोने

लगा। जब उसके परिजन उसे ढूंढते हुए वहाँ पहुँचे तो राजा की इस दुरावस्था को देख कर बहुत दुखी हुए। राजा ने उन्हें सब कुछ सच-सच बता दिया।

राजा धन्वन्त को महल में लाकर राजवैद्य को दिखलाया गया। राज्य भर के सभी वैद्यों और हकीमों ने भी दवा दी। किन्तु, कोई लाभ नहीं हुआ। राजवैद्य ने बताया कि शापित रोग पर दवा का प्रभाव नहीं होता। अब तो शाप देनेवाला व्यक्ति ही राजा को शाप से मुक्त कर सकता है।

राजा धन्वन्त का पुत्र राजकुमार निरंजन बड़ा ही साहसी, बहादुर और पितृभक्त युवक था। उससे पिता का यह कष्ट सहा नहीं गया। उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि चाहे जैसे भी हो मैं गंधर्व लोक अवश्य जाऊँगा और उस गंधर्व बाला से अनुनय-विनय कर अपने पिता को शाप मुक्त करने की प्रार्थना करूँगा, चाहे मुझे इसके लिए प्राणों की आहुति भी क्यों न देनी पड़े।

राजकुमार ने बुजुर्गों से सुन रखा था कि गंधर्व लोक पूर्व दिशा में है। इसलिए वह अपने राज्य से पूर्व दिशा में चल पड़ा। कई दिनों तक चलते-चलते वह एक घने निर्जन वन में पहुँच गया। कई दिनों का भूखा-प्यासा होने के कारण वह अचेत होकर गिर पड़ा।

जब उसकी चेतना पुनः वापस आई तो उसने देखा कि एक विकृत रूप वाली स्त्री उसकी सेवा कर रही है। उसने राजकुमार को खाने को फल और पीने को जल दिया। और अपना परिचय देते हुए कहा,-"मैं इस वन की पिशाचिनी हूँ। तुम मेरे निवास स्थान इस वृक्ष के नीचे अचेत पड़े थे, इसलिए अतिथि समझ कर तुम्हारा अतिथि सत्कार कर रही हूँ। इस भयानक वन में कभी मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन तुम कौन हो और इस अरण्य में कैसे भटक गये?

राजकुमार निरंजन ने अपना परिचय देकर पिशाचिनी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा,-"तुम पिशाचिनी नहीं, मेरे लिए देवी हो। तुमने मुझे नया जीवन दिया है। अब कृपा करके मुझे गंधर्व लोक का मार्ग भी बता दो।"

"लेकिन मानव युवक, गंधर्व लोक तो केवल आकाश-मार्ग से ही जा सकते हैं जो तुम मानव के लिए संभव नहीं है। इसलिए वहाँ जाने का हठ छोड़ दो।" पिशाचिनी ने सलाह दी।

"फिर मेरा यह जीवन व्यर्थ है। मैं अपने कर्तव्य को पूरा किये बिना जीवित वापस नहीं जा सकता।" इतना कह कर वह पुनः पूर्व दिशा की ओर जाने लगा।

तब पिशाचिनी ने उसे रोकते हुए कहा,-"ठहरो युवक! यदि तुम मेरी एक मांग पूरी करने का वचन दो तो तुम्हें मैं गन्धर्व लोक के द्वार तक तो पहुँचा

सकती हूँ। उसके अन्दर जाना मेरी शक्ति से बाहर है।''

''द्वार तक भी पहुँचा सको तो मेरे द्वारा संभव होनेवाली तुम्हारी हर मांग पूरी कर दूँगा।'' राजकुमार ने उसे वचन देते हुए कहा।

पिशाचिनी के कहने पर राजकुमार ने जैसे ही आँखें बन्द कीं, कि वे दोनों गन्धर्व लोक की सीमा पर पहुँच गये।

''अब गंधर्व लोक में प्रवेश करना तुम्हारा काम है। मैं बाहर तुम्हारा इंतजार करूँगी।'' बादलों की एक चोटी पर बैठती हुई पिशाचिनी बोली।

गंधर्व लोक में प्रवेश करते ही एक सुन्दर मानव युवक को देख कर गंधर्व कन्याओं ने उसे घेर लिया और उसे पकड़ कर गन्धर्व राज के पास ले गये। राजकुमार ने उसे अपनी दर्द भरी कहानी सुनाई।

गन्धर्व को राजकुमार और उसके पिता का कष्ट जान कर बहुत दया आई। उसने अपने पास बैठी अपनी बेटी पुष्पोत्तमा को यह पता लगाने के लिए कहा कि किस गन्धर्व कन्या ने राजा को शाप देकर अन्धा किया है।

''मैंने पिता जी, मैंने ही इसके पिता को शाप दिया है, क्योंकि उसने मेरा अपमान किया था और जब मैं पृथ्वी पर एकान्त वन में पुष्पराज वृक्ष के नीचे उसके फूलों की मादक गंध का आनन्द ले रही थी तो उसने व्यवधान उपस्थित किया था।'' पुष्पोत्तमा ने कहा।

राजकुमार ने अपने पिता की ओर से क्षमा माँगते हुए बड़ी नम्रता से उत्तर दिया,-''देवि! मेरे पिता ने आप के स्वर्गीय सौन्दर्य के प्रति सम्मान की भावना से प्रेरित होकर ही ऐसा कहा। फिर भी यदि उनके व्यवहार से आप के हृदय को ठेस पहुँची तो मैं क्षमा चाहता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आप उन्हें शाप मुक्त कर दें।''

राजकुमार की विनम्रता और शिष्टता से पुष्पोत्तमा न केवल बहुत प्रसन्न हुई बल्कि पृथ्वी से गन्धर्व लोक तक की उसकी साहसिक यात्रा से प्रभावित भी हुई। उसने राजकुमार को एक पुष्प देते हुए कहा,-''इसे अपने पिता की आँखों से स्पर्श करा दो तो उनमें पुनः ज्योति आ जायेगी। लेकिन स्मरण रहे कि यह काम उसी के हाथ से होना चाहिए जिसने कभी अपना वचन-भंग नहीं किया हो। वचन-भंग होते ही आँखों की ज्योति पुनः जाती रहेगी।

राजकुमार ने कृतज्ञता के साथ पुष्प लेकर गंधर्व राज तथा पुष्पोत्तमा से विदा ली। गन्धर्व लोक के द्वार पर पिशाचिनी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने क्षण भर में ही राजकुमार को गान्धार की राजधानी में उसके महल में पहुँचा दिया और कहा,-''मैंने तेरा असंभव कार्य भी संभव कर दिया है। अब तुम इसके बदले में मेरी एक छोटी-सी मांग पूरी कर

दो, जिसके लिए तुम वचनवद्ध हो। मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूँ।''

''ठीक है। तुम्हारे उपकार के बदले में यह कुछ भी नहीं है। तुम यहीं ठहरो, मैं अपने पिता के नेत्रों की ज्योति वापस लाकर यहीं आता हूँ।'' यह कह कर राजकुमार राजभवन में चला गया। उसने जैसे ही पुष्प को पिता के नेत्रों से स्पर्श किया कि उसकी ज्योति वापस आ गई। राजा यथावत् देखने लग गया। उसके हर्ष की सीमा न रही। सारे राजमहल में उल्लास का वातावरण छा गया।

इसके बाद राजकुमार निरंजन ने राजा को अपनी गन्धर्व-लोक तक की यात्रा की पूरी कहानी सुना दी।अपने दिये हुए वचन के अनुसार वह पिशाचिनी के पास आ गया और बोला,-''मैं अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध अपने वचन के अनुसार तुमसे विवाह कर रहा हूँ, लेकिन विवाह के पश्चात अपने कक्ष से बाहर नहीं निकलना, क्योंकि सब तुमसे डर जायेंगे।''

पिशाचिनी ने इसे सहर्ष स्वीकारते हुए कहा,-''जैसा तुम कहोगे, वैसा ही करूँगी।''

फिर दोनों ने महल के एकान्त कोने में गंधर्व रीति से विवाह कर लिया। विवाह की रस्म पूरी होते ही, देखो! एक चमत्कार हो गया। पिशाचिनी एक सुन्दर राजकुमारी में बदल गई। राजकुमार सुखद आश्चर्य से एक टक राजकुमारी को निहारता रहा।

मुस्कुराती हुई राजकुमारी बोली, ''आश्चर्य न करो राजकुमार! मैं अब पिशाचिनी नहीं, सचमुच राजकुमारी हूँ, वत्स देश की राजकुमारी सुहासिनी। तुमने मुझसे विवाह कर पिशाचिनी की योनि से मुझे मुक्त कर दिया है। मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ।''

''लेकिन तुम्हें पिशाचिनी किसने बनाया?'' राजकुमार ने आश्चर्य से पूछा।

राजकुमारी अपनी कहानी सुनाती हुई बोली,-''एक बार एक क्रोधी मुनि ने मेरे पिता से याचना में राजकुमारी से विवाह की इच्छा प्रकट की। मेरे पिता मुनि के क्रोध के भय से उससे मेरा विवाह कर देने के लिए सहमत हो गये। लेकिन मैंने साफ इनकार कर दिया। मुनि ने तब क्रोधित होकर मुझे पिशाचिनी बन जाने का शाप दे दिया। मेरे पिता के बहुत प्रार्थना करने पर मुनि ने शाप विमोचन का उपाय बताते हुए कहा,-'यदि कोई राजकुमार पिशाचिनी के रूप में उससे विवाह कर ले तो वह शापमुक्त हो जायेगी।' आज मेरे लिए वह शुभ घड़ी आ गई।

राजकुमार ने यह सुखद समाचार राजा को सुनाया। राजा ने धूमधाम से दोनों का विवाह कर दिया। —('चन्दामामा' में २५ वर्ष पूर्व प्रकशित कहानी)

# दिल्ली के सात जन्म

महाभारत काल के पांडवों के लिए मयदानव द्वारा निर्मित मोहक माया नगरी-इन्द्रप्रस्थ उस स्थान पर बसनेवाला पहला शहर था, जहाँ विश्व के सबसे बड़े प्रजातंत्र-भारत की राजधानी आज की नई दिल्ली फैली हुई है।

इन्द्रप्रस्थ पौराणिक काल का नगर था। इसका कुछ भी अवशेष अब नहीं है। सम्भवतः यमुना नदी ने कई बार अपनी धारा बदली और प्राचीन आबादी को या तो भूमिगत कर दिया या वह बहा ले गई। किन्तु, जनश्रुति के अनुसार कालक्रम में उसी स्थान पर पाँच और नगर बसे। वर्तमान नई दिल्ली सातवां नगर है।

क्या यही कारण है कि इसे दिल्ली या ढीली (जो कसा हुआ न हो) कहते हैं? पूर्वजों का कहना है कि यह नगर सर्पराज वासुकी के सिर पर बसा हुआ है और जब भी वे समय-समय पर सिरवट बदलते हैं, तो भूकम्प आ जाता है और शहर ध्वस्त हो जाता है।

किन्तु, यह तो गल्प है। दिल्ली का इतिहास युद्धों और आक्रमणों से भरा पड़ा है। यहाँ हर नये निर्माण का विध्वंस पीछा करता रहा है।

इतिहास बताता है कि इस स्थान पर सबसे पहले आठवीं शताब्दी में राजा अनंगपाल ने नगर बसाया था। उसके महल को लाल कोट कहा जाता था। इसके बाद चौहान राजाओं ने इसे राजधानी बनाई। उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए वीर और उदार चेता पृथ्वीराज। कन्नौज की राजकुमारी संयुक्ता से उन्हें प्रेम था और संयुक्ता भी उन्हें चाहती थी। लेकिन कन्नौज का राजा जयचन्द्र नहीं चाहता था कि उन दोनों का विवाह हो। उसने अपनी बेटी के विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन किया। इसमें बहुत से राजकुमारों ने भाग लिया। संयुक्ता को अपनी पसन्द के राजकुमार के गले में वरमाला पहनानी थी।

जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को निमंत्रित करने के बदले स्वयंवर कक्ष के द्वारपाल के स्थान पर

उसकी प्रतिमा रखवा दी। लेकिन संयुक्ता अपने पिता से कहीं अधिक चतुर निकली। वह राजकुमारों की पंक्तियों के बीच से सीधी उस प्रतिमा के पास गई और उसके गले में वरमाला डाल दी। भीड़ में से निकल कर पृथ्वीराज स्वयं वहाँ पहुँच गये और जब तक लोग स्थिति को समझ पाते, संयुक्ता को घोड़े पर बिठा कर वे देखते-देखते आँखों से ओझल हो गये।

दोनों ने परम्परागत विधि से विवाह कर लिया। यह सन् ११७५ की घटना है।

सन् ११९२ में गोर के तुर्की सुल्तान मुहम्मद गोरी ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया परन्तु पृथ्वीराज से हार गया और बन्दी बना लिया गया। दूसरे वर्ष गोरी ने फिर से चढ़ाई कर दी और जयचन्द्र की सहायता से पृथ्वीराज को परास्त कर उसे कत्ल कर दिया।

हाय! उसने अगले ही वर्ष अपने सहायक जयचन्द्र को कत्ल कर उसका राज्य हड़प लिया। पर शीघ्र ही अपने विद्रोहियों द्वारा छूरा घोंप कर गोरी की भी हत्या कर दी गई।

दिल्ली पर शासन करने वाले राजवंशों में मुगल सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। अंग्रेजों ने सन् १९११ ईस्वी में दिल्ली को अपनी राजधानी बनाई। भारत की स्वाधीनता की घोषणा सन् १९४७ में दिल्ली से ही की गई।

इस नगर में अनगिनत ऐतिहासिक स्मारक हैं जो सबके लिए आकर्षक और शिक्षाप्रद हैं।

आधुनिक दिल्ली, जिसे नई दिल्ली कहा जाता है, १४८३ कि.मी. के क्षेत्रफल में फैली हुई है। इसकी जनसंख्या लगभग ९५ लाख है। अंग्रेजी के अतिरिक्त, अधिकांशतः यहाँ हिन्दी, पंजाबी और उर्दू भाषाएं बोली जाती हैं।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के रूप में दिल्ली का एक अलग स्थान है। यहाँ ७० सदस्यों की एक विधान सभा है और एक मंत्रिपरिषद है।

दिल्ली भारत की राजधानी मात्र नहीं है, यह उत्तर भारत का व्यापार-केन्द्र भी है, जिसके सीमान्तर्गत और बाहर अनेकानेक उद्योग धन्धे हैं।

नगर में कई विश्वविद्यालय और शिक्षा के नवीन-पुरातन केन्द्र भी हैं। नई दिल्ली राजनीतिक और सांस्कृतिक चहल-पहल से गूंजता रहता है।
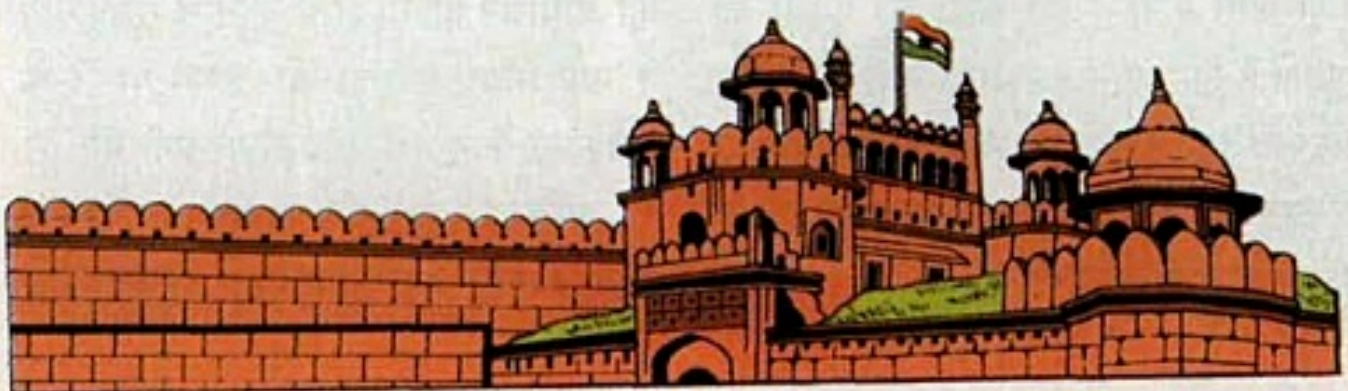
# उधारखोरों की परेशानी

एक गाँव में नरसिंह नाम का एक ग्राम अधिकारी रहता था। वह गाँव के बीचों बीच एक बरगद के पेड़ के नीचे गाँव वालों को फैसले सुनाया करता था। वह निष्पक्ष न्याय के लिए आस-पास के कई गाँवों में प्रसिद्ध था। एक दिन हीरा लाल नाम का एक ब्याज-व्यापारी उसके पास आकर बोला,-''प्रभु! मैं तो लुट गया। आप न्याय करें।''

नरसिंह ने पूछा कि तुम्हें क्या कष्ट है।

हीरा लाल ने कहा,-''पड़ोस के गाँव में शंकर नाम का एक व्यक्ति है। उसने दो वर्ष पूर्व मुझ से सात सौ रुपये उधार लिया। उसने अब तक न तो ब्याज दिया है और न मूल धन वापस किया। लगता है वह मेरा पैसा वापस नहीं करना चाहता। आप न्याय करें प्रभु! और उससे मेरे रुपये दिलवा दें।''

इस पर नरसिंह ने अपने नौकर को हुक्म दिया कि शंकर के हाथ-पाँव बाँध कर उसे मेरे पास लाओ।

नौकर शंकर को पकड़ कर ग्राम अधिकारी के पास लाने लगा। रास्ते में इमली का एक पेड़ था और कड़ी धूप के कारण बड़ी गर्मी थी। नौकर ने शंकर से कहा कि धूप में बहुत गर्मी है, इसलिए थोड़ी देर इमली के पेड़ के नीचे आराम कर लेते हैं।

यह सुन कर शंकर बहुत घबरा गया और कहने लगा,-''इस पेड़ के आस-पास जितने गाँव हैं, उन सब के लोगों से मैंने उधार ले रखे हैं और किसी को वापस नहीं किया है। उनमें से कोई देख लेगा तो मुझे छोड़ेगा नहीं। इसलिए मुझे जल्दी अपने गाँव ले चलो।''

# खोज करो! अभिव्यक्त

इस अंक में प्रकाशित प्रश्नावली के उत्तर अगले अंक में दिये जायेंगे। तब तक **'भारत की खोज प्रश्नोत्तरी, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडापलानि, चेन्नई-६०० ०२६'** के पते पर अपने उत्तर भेजने के लिए आप का स्वागत है।
किन्तु, इस प्रश्नोत्तरी-स्पर्द्धा में भाग लेने के लिए निम्नलिखित सर्जनात्मक कृति अनिवार्य है:
चन्दामामा के पिछले अंक में प्रकाशित (कुछ पृष्ठों के अधो भाग पर) सभी उद्धरणों और पूरक वाक्यों को पढ़िए और यह बताइए कि उनमें से सबसे अधिक आप को कौन-सा अच्छा लगा और क्यों। उद्धरण की पृष्ठ संख्या देते हुए लगभग सौ शब्दों में कारण बतायें। इसे अपने अध्यापक अथवा अभिभावक द्वारा प्रमाणित करा कर अपना नाम तथा हस्ताक्षर, उम्र, कक्षा और विद्यालय (यदि छात्र हैं) तथा अपना पूरा पता लिख कर उपरोक्त पते पर भेज दें।

**प्रथम पुरस्कार : 1000 रु.**
**द्वितीय पुरस्कार : 500 रु.**

**तथा**
**पाँच बधाई पुरस्कार**
**प्रत्येक 200 रुपये**

चन्द

भारत

प्रश

## 1

**भारत की खोज प्रश्नोत्तरी :**

एक आक्रामक ने राजा का अपहरण कर लिया और रानी को सन्देश भेजा कि राजा को तभी मुक्त किया जायेगा जब रानी आक्रामक के साथ विवाह के लिए राजी हो जायेगी। रानी सहमत हो गई और पालकियों में सवार कई सौ दासियों की शोभा-यात्रा लेकर आक्रामक के शिविर में पहुँची। शिविर में पालकियों से बाहर आने वाले दासियाँ नहीं; बल्कि सैनिक थे। उन्होंने शत्रु के शिविर में तबाही मचा दी, जबकि वीरांगना रानी राजा को मुक्त करा कर अपने महल में ले गई।
इस ऐतिहासिक आख्यान में रानी और राजा कौन थे? आक्रामक कौन था? ऐतिहासिक दृष्टि से यह किस शताब्दी की घटना है?

निम्नलिखित पौराणिक
युगल चरित्रों में क्य
सम्बन्ध है?

## 2

चन्दामामा : भाषा

# ...करो! पुरस्कार लो!

## ...ामा

१. कौन-सी भारतीय साहित्य-कृति विश्व का प्रथम नीतिकथा (फेबल्स)-संकलन है? लेखक कौन है?

२. कौन-सी भारतीय साहित्य-कृति कथा साहित्य (फिक्शन) का विश्व का प्रथम संकलन है? लेखक कौन है?

३. कौन-सी भारतीय साहित्य-कृति विश्व का प्रथम उपदेशात्मक यानी नैतिक या आध्यात्मिक कहानियों का संग्रह है?

४. कौन-सा भारतीय धर्म शास्त्र सबसे अधिक पढ़ा जाता है?

५. प्राचीनतम भारतीय साहित्य के कौन-कौन से चार कालक्रमिक चरण हैं?

### शर्तें

१. चन्दामामा इंडिया लि., लिंटास अमिराष्ट्रिपुरिज इंडिया लि., इनिशियेटिव मिडिया और ब्रिटानिया इण्डस्ट्रीज के कर्मचारी तथा उनके सम्बन्धी/सहयोगी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

२. निर्णयकों का निर्णय अन्तिम होगा और इस सम्बन्ध में कोई पर्णचार नहीं किया जायेगा।

३. अपठनीय प्रविष्टियाँ रद्द कर दी जायेंगी।

४. परिणाम चन्दामामा के अप्रैल, २००० अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

५. प्रविष्टियाँ प्राप्त करने की अन्तिम तिथि ३१ जनवरी, २००० है।

...। भीम : शिशुपाल
...। जरासंध : कंस
...। भीष्म : विचित्रवीर्य
...। अश्वत्थामा : कृपाचार्य
... विदुर : शुकदेव

## ...नेक : परम्परा एक

# सच्चा चमत्कार

एक दिन की बात है। शाम ढले देर हो चुकी थी। एक व्यापारी ने अपनी दुकान के दरवाजों में ताला लगाया और दिन भर की बिक्री के रुपयों की छोटी थैली हाथ में लेकर अपने घर की ओर मुड़ा।

अचानक कहीं से एक युवक आ धमका और उसकी थैली झपट कर चम्पते हो गया। व्यापारी तथा कुछ राहगीरों ने लुटेरे का पीछा किया। वह टेढ़ा-मेढा दौड़ रहा था, फिर भी वह तुरन्त पकड़ लिया गया। लोगों ने उसे शहर के कोतवाल को सुपुर्द कर दिया। उस युवक ने झट कोतवाल के पाँव पकड़ लिये और क्षमा के लिए प्रार्थना की।

लेकिन अभिमानी अफसर ने उसे जोर से लात मारी। वह बहुत दूर जा गिरा। वह इस मौके को खोना नहीं चाहता था। वह झटपट उठा और नौ-दो ग्यारह हो गया।

कोतवाल के सिपाहियों ने उसका तेजी से पीछा किया। तब तक अन्धेरा हो चुका था। युवक ने कई बार भागने की दिशा बदली और वह सिपाहियों से बच निकलने में सफल हो गया।

वह शहर से बाहर निकल कर एक जंगल की ओर जाने लगा। लेकिन जंगल तक पहुंचने से पहले उसने अपने पीछे भारी कदमों की आवाज सुनी। वहीं पर सड़क की एक ओर एक छोटी कुटिया थी। वहाँ से मद्धिम प्रकाश की एक किरण सड़क पर पड़ रही थी। युवक ने वहाँ तक पहुँचने की भरसक कोशिश की। लेकिन वह थक कर चूर हो रहा था। वह सड़क पर ही निढाल गिर पड़ा और बेहोश हो गया। सिपाही उसके शिथिल शरीर के पास से ही गुजरे, लेकिन उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

कुटिया में एक महात्मा रहते थे। उन्होंने उस युवक को अपनी कुटिया में लाकर उसकी सेवा-सुश्रूषा की। उसे होश आ गया।

"मेरी प्रार्थना है कि मुझे अपने पास रख लें और सेवा करने का अवसर दें।" युवक ने महात्मा से सविनय अनुरोध किया। उसने सोचा कि यह स्थान उसके लिए निरापद रहेगा, क्योंकि सिपाही सामान्यतः महात्मा या उसके शिष्य को परेशान नहीं करेंगे।

दयालु महात्मा ने उसे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। युवक एक सच्चा भक्त बन गया। महात्मा ने उसे योग और ध्यान करना सिखाया तथा ज्ञान की बातें बतायीं। कालक्रम में उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया।

कुछ वर्षों के उपरान्त महात्मा ने अपना शरीर त्याग दिया। लेकिन उसका भक्त, जो स्वयं भी महात्मा के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था, उसी कुटिया में रहता रहा। गुरु के समान ही उसके शिष्य की भी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती थी।

एक दिन अपने भक्तों के अनुरोध पर उसने नगर का भ्रमण किया। कई लोग उसके दर्शन के लिए आये। उन सबने कई प्रश्न पूछे और युवक के सरल और सटीक उत्तर से सन्तोष अनुभव किया।

एक वृद्ध व्यक्ति ने, जो महात्मा का प्रवचन ध्यान से सुन रहा था, उसके चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुए कहा,-"महात्मा जी, मैं यदि थोड़ा-सा भी भगवान के निकट आ सकूँ तो यह चमत्कार होगा। मैंने बड़ा ही अशिष्ट और पाशविक
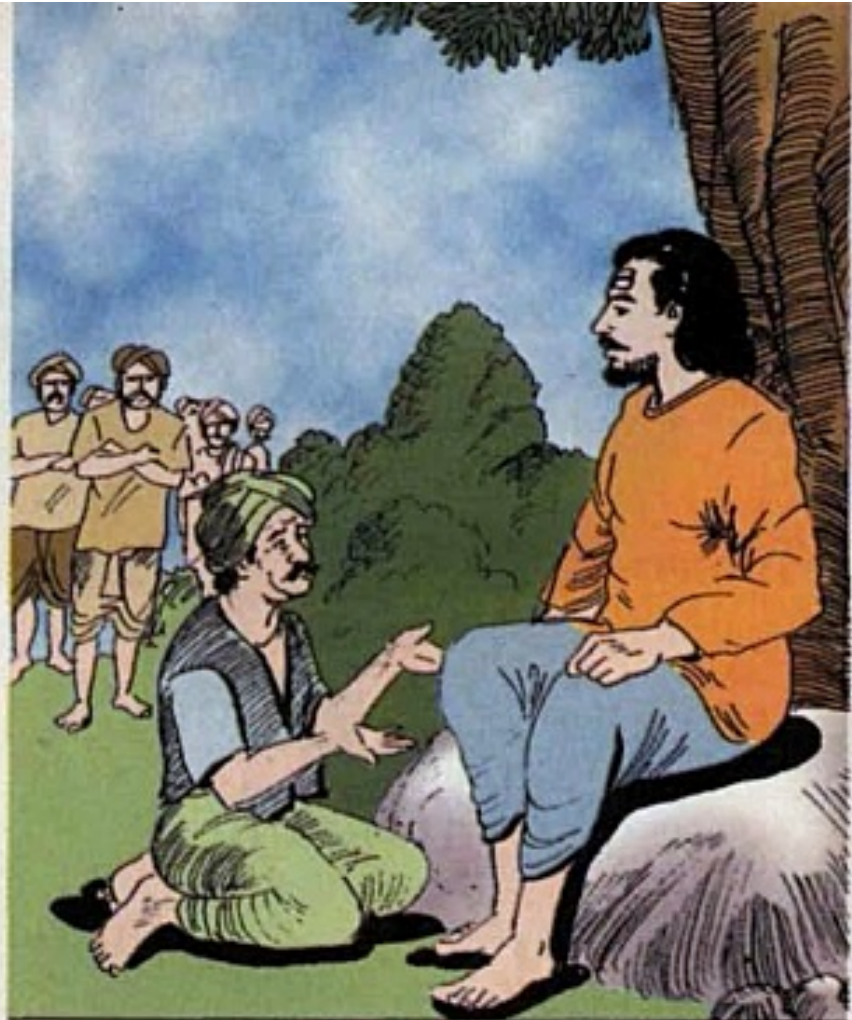
जीवन बिताया है। मैं इस शहर का कोतवाल था।"

"चमत्कार तो होते हैं मेरे मित्र! एक दिन मैंने तुम्हारे चरण पकड़े थे। आज तुम मेरे चरण पकड़ रहे हो। क्या यह चमत्कार नहीं है? यदि एक चोर पर भगवान की कृपा हो सकती है तो चोर पकड़नेवाले पर क्यों नहीं हो सकती।" महात्मा ने मुस्कुराते हुए कहा।

वृद्ध व्यक्ति हक्का-बक्का सा महात्मा की ओर देखता रहा। तब महात्मा ने बेझिझक उस प्रसंग का वर्णन किया जिसने उसे एक चोर से महात्मा बना दिया था।

वृद्ध कोतवाल ने पुनः महात्मा के चरण पकड़ लिए और उसकी आँखों से पश्चाताप के आँसू छलक पड़े।

# पाकिस्तान-जहाँ लोकतंत्र सिसकता है!

हमारा पुरातन उत्तम भारत सन् १९४७ में विभाजित हो गया। इसके बृहत् भाग का नाम जबकि भारत ही बना रहा, इसका छोटा भाग पाकिस्तान नाम से जाना गया।

जब कि, किसी धर्म विशेष को देशका राजकीय धर्म न बना कर भारत धर्मनिरपेक्ष देश रहा, पाकिस्तान ने अपने आप को सन् १९५६ में इस्लामी गणतंत्र घोषित कर दिया।

स्वाधीनता के समय दोनों देशों ने लोकतंत्र की शपथ ली थी। दोनों ने नियमित रूप से चुनाव कराने और जनता को अपनी सरकार स्वयं बनाने का अधिकार देने का निश्चय किया था। लोकतांत्रिक प्रणाली में कई त्रुटियों के बावजूद सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्त में जनता का संकल्प हावी होता है। वे समय-समय पर बिना रक्तपात शान्तिपूर्वक सरकार को बदल सकते हैं।

किन्तु, यदि सत्ता का भूखा कोई तानाशाह देश पर शासन करता है तो हिंसा या रक्तपात के बिना उसे बदलना कठिन होता है।

भारत इस बात पर गर्व कर सकता है कि यह धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्र देश है-वास्तव में यह विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। किन्तु-दुर्भाग्यवश पाकिस्तान के साथ यह बात लागू नहीं होती। सन् १९५८ में फिल्ड मार्शल अयूब खान ने राज्य विप्लव द्वारा सत्ता हथिया ली। उसने संविधान में परिवर्तन कर दिया और तानाशाही अधिकारों के साथ वह राष्ट्रपति बन गया। किन्तु जनरल याह्या खान के रूप में इसे अपनी टक्कर का आदमी मिल गया जिसने सन् १९६९ में इसका तख्ता पलट दिया।

सन् १९७१ में याह्या खान ने पूर्वी पाकिस्तान (पहले पूर्वी बंगाल और अब बांग्लादेश) के लोगों पर खुल कर पाशविक अत्याचार किया। पूर्वी पाकिस्तान के लाखों बंगाली, हिन्दू और मुस्लिम दोनों, भारत में शरणार्थी बन गये। भारत को बाध्य होकर हस्तक्षेप करना पड़ा। भारतीय सेना बांग्लादेश के वासियों के समर्थन से ढाका में कूच कर गई और पाकिस्तानी सेना को समर्पण करना पड़ा। एक नये राष्ट्र स्वतंत्र बांग्लादेश का उदय हुआ।

अपमानित याह्या खान ने एक राजनेता भुट्टो को सत्ता सौंप दी। सन् १९७७ में, देश की

दुर्व्यवस्था की स्थिति में, एक अन्य सेनाध्यक्ष जियाउलहक ने सत्ता पर कब्जा कर लिया। उसने जल्दी ही लोकतंत्र बहाल करने का वादा किया, किन्तु, वह अपने वचन से मुकर गया।

जियाउलहक सन् १९८८ में एक रहस्यमय विमान दुर्घटना में मारा गया। देश के आम चुनाव में भुट्टो की बेटी और पाकिस्तान पिपुल्स पार्टी की नेत्री बेनजीर भुट्टो को प्रधान मंत्री बनाया गया।

लेकिन उसका शासन अधिक दिनों तक नहीं रहा। राष्ट्रपति गुलाम इसाक खान ने उसे बर्खास्त कर दिया। सन् १९९० के अगले चुनाव में इस्लामी जम्हूरी पार्टी के नेता नवाज़ शरीफ सत्ता में आये। राष्ट्रपति ने सन् १९९३ में इसे भी बर्खास्त कर दिया। उसी वर्ष कराये गये आम चुनाव में बेनजीर भुट्टो की पार्टी जीत गई और वह पुनः प्रधान मंत्री बन गई। उसकी सरकार फिर से बर्खास्त कर दी गई और सन् १९९७ में नवाज़ शरीफ़ पुनः प्रधान मंत्री बने।

अचानक १२ अक्तूबर १९९९ को सेनाध्यक्ष जनरल परवेज़ मुशर्रफ़ ने, जिसे प्रधान मंत्री ने बर्खास्त कर दिया था, विद्रोह द्वारा प्रधान मंत्री शरीफ़ को बन्दी बना कर सत्ता पर कब्जा कर लिया। कई अपराधों के आरोप में नवाज़ शरीफ़ पर मुकदमा चलाया जा रहा है।

पाकिस्तान में हुए इस अस्वाभाविक परिवर्तन के प्रति विश्व के नेताओं का अच्छा रुख नहीं है। शरीफ़ ने अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य किया। प्रधान मंत्री को एक अफ़सर को बर्खास्त करने का अधिकार है। लेकिन मुशर्रफ़ ने जो किया, वह लोकतंत्र और संविधान के प्रति हिंसा है। अफसर चाहे कितना भी बड़ा हो, प्रधान मंत्री को नहीं हटा सकता। प्रश्न यह नहीं है कि कौन बेहतर है- शरीफ़ या मुशर्रफ़। प्रश्न यह है: क्या लोकतंत्र और संविधान को पलटने वाले सेनाधिकारी को बर्दाश्त किया जाये। विश्व की राय मुशर्रफ़ की कार्रवाई के विरुद्ध है।

# चित्र
## कैप्शन प्रतियोगिता

क्या तुम कुछ शब्दों में ऐसा चित्र परिचय बना सकते हो, जो एक दूसरे से संबंधित चित्रों के अनुकूल हो? तुम एक सामान्य पोस्टकार्ड पर इसे लिख कर इस पते पर भेज सकते हो:

चित्र परिचय
प्रतियोगिता
चन्दामामा
वडापलानि
चेन्नई-६०० ०२६

जो हमारे पास इस माह की २५ तारीख तक पहुंच जाए। सर्वश्रेष्ठ चित्र परिचय पर १००/- रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा, जिसका प्रकाशन अगले अंक के बाद के अंक में किया जाएगा।

## ब धा इ यां

पिछले अंक के पुरस्कार विजेता हैं
शिव भगत राम
हरिजन विद्यालय, सदर बाजार,
बैरकपुर, उत्तर चौबीस परगना-८४३१०१(प.बं)

विजयी प्रविष्टि
**निर्जीव की मरम्मत-सजीव की मुहब्बत।**